CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

7·1

ज्ञानपीठ पत्रिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन (शोध) संस्थान
गार
राणसी-५
प्रतिमा शोधार्थ प्र०
नवम्बर १९६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन

के

जादवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ता में
२१ से ३१ अक्तूबर १९६९ तक आयोजित
रजत जयन्ती अधिवेशन

में सम्मिलित

भारतीय विद्याओं के अध्येताओं

को

भारतीय ज्ञानपीठ

की

हार्दिक शुभकामनाएँ

Dr. C. Choudhary,
M.A., Ph.D., Acharya (B.E.S. Class I).
Dr. G. C. Choudhary
Nava Nalanda
Mahavihara
Nalanda (Patna)

F 622
१४४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष ८ : अंक ३-४

अनुक्रम

विश्वविद्यालयों में जैन विद्या विषयक शोध कार्य ५
विश्वविद्यालयों में जैन विद्याओं की अध्ययन-व्यवस्था २१
प्राचीन परम्परा की संस्थाओं में जैन विद्या का अध्ययन : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री २७
Problems of Research in Hindi literature : *Dr. Jagdish Chandra Jain* ३०
Research on Jain Mathematics : *Prof. Laxmi Chandra Jain* ३३
The Scope of Jainalogical Studies : *Dr. A. N. Upadhye* ४२
संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ४७
महाकवि रइधू और उन का साहित्य : डॉ० राजाराम जैन ५३
The Theory of Religion and Ethics : *Dr. B. B. Rayanade* ५७
अपभ्रंश कथा-काव्यों का हिन्दी प्रेमाख्यानकों के शिल्प पर प्रभाव : प्रेमचन्द्र जैन ५९
अहार क्षेत्र की मूर्तियों एवं शिलालेखों का आलोचनात्मक अध्ययन : सुश्री शान्ति जैन ६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि०७२२

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन : जगदीश

संगोष्ठी-सेमिनार : डॉ० हीरालाल जैन ६५

प्राकृत सेमिनार, पूना : डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ६९

स्नातक शिविर, सागर : डॉ० परमेष्ठीदास जैन ८१

अपभ्रंश कोश : आवश्यक या अनावश्यक :
डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ९१

प्राचीन साहित्य : आधुनिक प्रस्तुति : प्रो० प्रेमसुमन जैन ९५

भारतीय विद्या के तीन विशिष्ट ग्रन्थ :
पं० अमृतलाल शास्त्री १०१

अपभ्रंश का आदि काव्य : गो० च० १०९

कन्नड लिपि का ज्ञान : पं० के० भुजबली शास्त्री १११

राजस्थान के विश्वविद्यालयों में प्राकृत :
डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल ११३

गुजरात के विश्वविद्यालयों में प्राकृत :
प्रो० कानजी भाई पटेल ११७

A study of Astronomical aspect in Jainism :
Sri Gyan Chand Jain १२३

ज्ञान की उपेक्षित शाखाओं का अध्ययन :
डॉ० गोकुलचंन्द्र जैन १४९

प्राचीन भारतीय साहित्य के मानक ग्रन्थ १५९

१५४८

मूल्य वार्षिक ६.००, ००.५५ प्रति
यह अंक दो रुपया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"The Jains have extended their activities beyond the sphere of their own religious literature to a far greater extent than the Budhists have done, and they have memorable achievements in the secular sciences to their credit, in philosophy, grammar lexicography, poetics, mathematics, astronomy and astrology, and even in the science of politics. In one way or the other there is always some connection even of these 'profane' works with religion. In Southern India the Jainas have also rendered services in developing the Dravidian languages, Tamil and Telugu, and especially the Kanarese literary language. They have, besides, written a considerable amount in Gujarāti, Hindī and Mārvāri. Thus we see that they occupy no mean position in the history of Indian literature and Indian thought."

—*M. Winternitz*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वविद्यालयों में जैन विद्या विषयक शोध कार्य

ज्ञानपीठ पत्रिका के अक्तूबर १९६८ के अंक में भारतीय विश्वविद्यालयों में जैन विद्याओं से सम्बन्धित विषयों पर लिखे गये पी-एच० डी० या डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत चौवन शोध प्रबन्धों तथा शोध कार्य के लिए स्वीकृत सतहत्तर विषयों की जानकारी दी गयी थी। स्वीकृत विषयों में से कई एक पर इस वर्ष में प्रबन्ध तैयार हो कर परीक्षार्थ प्रस्तुत किये गये तथा उन पर पी-एच० डी० की उपाधि भी प्रदान की गयी। पिछले लगभग एक वर्ष में जो और सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं वे सब यहाँ विषयानुसार प्रस्तुत हैं।

स्वीकृत शोध प्रबन्ध

आगम साहित्य

लाइफ इन ऐंशियेण्ट इंडिया एज़ डिपिक्टेड इन द जैन आगमाज़ [अँगरेज़ी]
डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि० १९४४, न्यू बुक कं० बम्बई द्वारा १९४७ में प्रकाशित। हिन्दी अनुवाद 'जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज' चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी से १९६५ में प्रकाशित।

जैन आगम शास्त्र के अनुसार मानव व्यक्तित्व का विकास [हिन्दी]
डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन, पी-एच० डी०, सागर वि० वि० १९५७, अप्रकाशित।

आचारांग सूत्र का समालोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० परमेष्ठीदास जैन, पी-एच० डी०, सागर वि० वि० १९६८, अप्रकाशित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगम साहित्य में जैनाचार [हिन्दी]

डॉ० अजित शुकदेव शर्मा, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६९ अप्रकाशित।

उत्तराध्ययन सूत्र का समालोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]

डॉ० सुदर्शन लाल जैन, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६८, अप्रकाशित।

स्टडीज़ इन भगवती सूत्र [अँगरेज़ी]

डॉ० जे० सी० सिकदार, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६०, प्राकृत विद्यापीठ, वैशाली द्वारा प्रकाशित।

ए कल्चर स्टडी ऑव निशीथचूर्णि

डॉ० श्रीमती मधु सेन, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६९, अप्रकाशित।

जैन और बौद्ध आगमों में नारी [हिन्दी]

डॉ० कोमलचन्द्र जैन, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६७, सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर द्वारा प्रकाशित।

दर्शन

स्टडीज़ इन जैन फ़िलॉसफ़ी [अँगरेज़ी]

डॉ० नथमल टाटिया, डी० लिट्०, कलकत्ता वि० वि०, जैन कल्चरल रिसर्च सोसाइटी, वाराणसी द्वारा प्रकाशित।

मेटाफिजीकल सेन्थेसिस—इट्स नेचर एण्ड वेल्यु एज़ सजेस्टेड बाई ए स्टडी ऑव द फ़िलॉसफ़ी ऑव कुन्दकुन्द [अँगरेज़ी]

डॉ० प्रद्युम्नकुमार जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९६३, अप्रकाशित।

आचार्य कुन्दकुन्द और उन का समयसार [हिन्दी]

डॉ० लालबहादुर शास्त्री, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९६५, अप्रकाशित।

जैन स्तोत्र साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]

डॉ० कुलभूषण लोखंडे, पी-एच० डी०, विक्रम वि० वि०, १९६९, अप्रकाशित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धसेन दिवाकर : ए स्टडी विथ स्पेशल रिफ़रेन्स टू हिज़ सन्मति तर्क एण्ड अदर पब्लिश्ड द्वात्रिंशिकाज़ [अँगरेज़ी]

डॉ० पी० एन० देव, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०, अप्रकाशित ।

साइकोलॉजिकल एनालसिस ऑव जैन कर्म फ़िलॉसफ़ी [अँगरेज़ी]

डॉ० मोहनलाल मेहता, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९५४, सोहनलाल जैन धर्मप्रचारक समिति, अमृतसर द्वारा प्रकाशित ।

ए क्रिटिकल एण्ड कम्पेरेटिव स्टडी ऑव द जैन कन्सेप्शन ऑव मोक्ष [अँ०]

डॉ० वी० वी० रायनाडे, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९५८, अप्रकाशित ।

द कन्सेप्शन ऑव शोल इन जैन फ़िलॉसफ़ी [अँगरेज़ी]

डॉ० सुमतचन्द्र जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि०, १९६०, अप्रकाशित ।

जैन धर्म में अहिंसा [हिन्दी]

डॉ० वशिष्ठनारायण सिन्हा, पी-एच० डी० का० वि० वि० १९६८, अप्रकाशित ।

कन्सेप्ट ऑव ओमनीसाइन्स [अँगरेज़ी]

डॉ० रामजी सिंह, पी-एच० डी०, भागलपुर वि० वि० अप्रकाशित ।

डाक्ट्रिन ऑव मैटर इन जैनिज़्म [अँगरेज़ी]

डॉ० जे० सी० सिकदार, डी० लिट्०, जबलपुर वि० वि० १९६८, अप्रकाशित ।

न्याय—आचार शास्त्र

जैन एपिस्टिमोलाजी [अँगरेज़ी]

डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, पी-एच० डी०, का० वि० वि०, १९५२, अप्रकाशित ।

ए क्रिटिकल एडीशन ऑव सिद्धिविनिश्चय टीका

डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९५९, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वारा दो भागों में प्रकाशित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन तर्कशास्त्र में अनुमान विचार [हिन्दी]

डॉ० दरबारीलाल कोठिया, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६८, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित।

अकलंकज क्रिटिसिज़्म ऑव धर्मकीर्ति'ज़ फ़िलॉसफ़ी, ए स्टडी [अँगरेज़ी]

डॉ० नगीन जे० शाह, पी-एच० डी०, गुजरात वि० वि०, एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डोलाजी, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित।

सांख्य और जैन परिणामवाद का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० इन्दुकला झवेरी, पी–एच० डी०, बम्बई वि० वि०, अप्रकाशित।

ए क्रिटिकल सर्वे ऑव द कण्ट्रीब्यूशन ऑव जैन राइटरस् टू न्याय-वैशेषिक लिटरेचर विथ ए क्रिटिकल एडीशन ऑव ए टिप्पण ऑव न्याय-कन्दली ऑव श्रीधराचार्य

डॉ० जे० एस० जेटली, पी–एच० डी०, बम्बई वि० वि०

हिस्ट्री ऑव जैन मोनासिज़्म फ़्रॉम इन्स्क्रप्शन्स एण्ड लिटरेचर [अँगरेज़ी]

डॉ० एस० बी० देव, पी–एच० डी०, बम्बई वि० वि०, प्रकाशित।

एथिकल डाक्ट्रिन इन जैनिज़्म [अँगरेज़ी]

डॉ० कमलचन्द्र सोगानी, पी-एच० डी०, राजस्थान वि० वि० १९६१, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर द्वारा प्रकाशित।

जैन एथिक्स [अँगरेज़ी]

डॉ० दयानन्द भार्गव, पी-एच० डी०, दिल्ली वि० वि०, मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित।

बुद्ध विनय और जैनाचार का तुलनात्मक अध्ययन [हिन्दी]

डॉ० नन्दकिशोर प्रसाद, पी-एच० डी०, बिहार, वि० वि० १९६५, अप्रकाशित।

क्रिटिसिज़्म ऑव बुद्धिज़्म एण्ड जैनिज़्म इन ब्रह्मसूत्र [अँगरेजी]

डॉ० के० वी० आप्टे, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०।

जैनिज़्म इन बुद्धिस्ट लिटरेचर [अँगरेज़ी]

डॉ० भागचन्द्र जैन, पी–एच० डी०, विद्योदय वि० वि० श्री लंका, १९६६, अप्रकाशित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य और संस्कृति

हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६१, प्राकृत विद्यापीठ, वैशाली द्वारा प्रकाशित।

संस्कृत साहित्य के विकास में जैन कवियों का योगदान [हिन्दी]
डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, डी० लिट्०, मगध वि० वि० १९६५, अप्रकाशित।

सोमदेवकृत यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन
डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६५, सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर द्वारा प्रकाशित।

धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य का तुलनात्मक और समालोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० स्वप्न वनर्जी, पी–एच० डी०, इलाहावाद वि० वि० १९६८, अप्रकाशित।

धनपालकृत तिलकमंजरी का आलोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० जगन्नाथ पाठक, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६९, अप्रकाशित।

तिलक मंजरी का आलोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० वीरेन्द्रकुमार जैन, पी-एच०, डी० विक्रम वि० वि० १९६९, अप्रकाशित।

पुराण तथा चरित काव्य

आदिपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० सिद्धनाथ झा, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९६५, अप्रकाशित।

आचार्य जिनसेन कृत महापुराण के आधार पर ऋषभ तथा भरत के जीवन चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० नरेन्द्रकुमार विद्यार्थी, पी-एच० डी०, सागर वि० वि० १९६६, अप्रकाशित।

जिनसेन के हरिवंशपुराण का समालोचनात्मक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० सूर्यदेव पाण्डेय, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६७, अप्रकाशित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रविषेण कृत पद्मपुराण तथा तुलसीकृत रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन [हिन्दी]

डॉ० रमाकान्त शुक्ल, पी-एच० डी०, आगरा विश्वविद्यालय १९६७, अप्रकाशित ।

ए क्रिटिकल स्टडी ऑव पउमचरियं ऑव विमलसूरि [अँगरेज़ी]

डॉ० पी० एम० उपाध्ये, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०, अप्रकाशित ।

ए क्रिटिकल स्टडी ऑव पउमचरियं ऑव विमलसूरि [अँगरेज़ी]

डॉ० के० ऋषभचन्द्र, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६२, अप्रकाशित।

द पउमचरिउ ऑव स्वयम्भूदेव (विद्याधर काण्ड) [अँगरेज़ी]

डॉ० एच० सी० भायाणी, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०, सिंघी ग्रन्थमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित ।

द स्टोरी ऑव राम इन जैन लिटरेचर एज़ प्रजेण्टेड बाई श्वेताम्बर एण्ड दिगम्बर पोइट्स इन द प्राकृत, संस्कृत एण्ड अपभ्रंश लेंग्वेजेज़ [अँगरेज़ी]

डॉ० के० वी० अभ्यंकर, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०, अप्रकाशित ।

पउम चरिउ और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन [हिन्दी]

डॉ० देवनारायण शर्मा, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि०, १९६३, अप्रकाशित ।

पउमचरिउ एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन [हिन्दी]

डॉ० जी० एन० साठे, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि० ।

जैन कवि स्वयम्भू कृत पउम चरिउ तथा तुलसी कृत रामायण [हिन्दी]

डॉ० ओमप्रकाश दीक्षित, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९६२, अप्रकाशित ।

द स्टोरी ऑव राम इन द हिन्दू, द बुद्धिस्ट एण्ड द जैन लिटरेचर इन संस्कृत, प्राकृत एण्ड अपभ्रंश [अँगरेज़ी]

डॉ० वामन महादेव कुलकर्णी, पी-एच० डी०, का० वि० वि० १९५२, अप्रकाशित ।

आचार्य पुष्पदन्त : एक अध्ययन [हिन्दी]

डॉ० राजकुमार जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९५९, अप्रकाशित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि पुष्पदन्त : एक अपभ्रंश पोइट ऑव टेन्थ सेन्चुरी [हिन्दी]
डॉ० राजनारायण पाण्डेय, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९६३, अप्रकाशित ।

ए क्रिटिकल स्टडी ऑव महापुराण ऑव पुष्पदन्त (आई० ई०–क्रिटिकल स्टडी ऑव आल द देस्य एण्ड रेयर वर्ड्स फ्रॉम पुष्पदन्ताज़ महापुराण एण्ड हिज़ अदर वर्क्स इन अपभ्रंश) [अँगरेजी]
डॉ० श्रीमती रत्ना नागेश श्रीयान्, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०, एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डोलाजी, अहमदाबाद से प्रकाश्य ।

ए क्रिटिकल स्टडी ऑव द वर्क्स ऑव महाकवि रइधू [हिन्दी]
डॉ० राजाराम जैन, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६४-६५, प्राकृत विद्यापीठ, वैशाली से प्रकाश्य ।

ए क्रिटिकल स्टडी ऑव द लाइफ़ ऑव जम्बूस्वामी ऑन द बेसिस ऑव जंबूसामी चरिउ ऑव वीर
डॉ० विमलप्रकाश जैन, पी-एच० डी० जबलपुर वि० वि० १९६८, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी द्वारा प्रकाशित ।

भविसयत्तकहा और अपभ्रंश कथा काव्य [हिन्दी]
डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९६४, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाश्य ।

अपभ्रंश भाषा और साहित्य

हेमचन्द्र के अपभ्रंश सूत्रों की पृष्ठभूमि और उन का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० परममित्र शास्त्री, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६५, अप्रकाशित ।

अपभ्रंश भाषा का अध्ययन [हिन्दी]
डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, डी० लिट्, पटना वि० वि० १९६३, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा द्वारा प्रकाशित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश साहित्य [हिन्दी]

डॉ० हरिवंश कोछड़, पी-एच० डी०, देहली वि० वि० १९५२, प्रकाशित।

अपभ्रंश भाषा और साहित्य [हिन्दी]

डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९५७, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी द्वारा प्रकाशित।

अपभ्रंश के स्फुट साहित्यिक मुक्तक [हिन्दी]

डॉ० एन० पी० शर्मा, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६७, अप्रकाशित।

अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति [हिन्दी]

डॉ० अम्बादत्त पन्त, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९५८, अप्रकाशित।

प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य और हिन्दी पर उस का प्रभाव [हिन्दी]

डॉ० रामसिंह तोमर, पी-एच० डी०, इलाहाबाद वि० वि० १९५१, प्रकाशित।

हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाएँ और साहित्य

प्राचीन हिन्दी साहित्य पर जैन साहित्य का प्रभाव [हिन्दी]

डॉ० धन्यकुमार जैन, पी०-एच० डी०, अलीगढ़ वि० वि० १९६१,

हिन्दी भक्तिकाव्य में जैन साहित्य का योगदान [हिन्दी]

डॉ० प्रेमसागर जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९५९, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी द्वारा दो भागों में प्रकाशित।

मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य (वि० स० १६०० से १८०० तक)

डॉ० गदाधर सिंह, पी-एच० डी०, मगध वि० वि० १९६९, अप्रकाशित।

कविवर बनारसीदास, जीवनी और कृतित्व [हिन्दी]

डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९५९, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी द्वारा प्रकाशित।

प्राचीन हिन्दी काव्य में अहिंसा के तत्त्व [हिन्दी] ✓

डॉ० विद्यानाथ मिश्र, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६३, अप्रकाशित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी बारहमासा साहित्य [हिन्दी]

डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९६२, अप्रकाशित ।

ए क्रिटिकल स्टडी ऑव ओल्ड गुजराती रास फ़ॉर्म एज़ डिटरमिण्ड फ़ॉम द स्पेसीमेन अवेलेविल विट्वीन १२ टू १८ सेन्चुरी ए० डी०,

डॉ० श्रीमती भारतीय एम० वैद्या, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि० ।

राजस्थानी बेली साहित्य [हिन्दी]

डॉ० नरेन्द्र भानावत, पी-एच० डी०, राजस्थान वि० वि० १९६२, राजस्थान साहित्य एकेडेमी, उदयपुर द्वारा १९६५ में प्रकाशित ।

जैन कवियों के ब्रज भाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन (१७०० से १९०० तक) [हिन्दी]

डॉ० लालचन्द्र जैन, पी-एच० डी० राजस्थान, वि० वि० १९६९, अप्रकाशित ।

आचार्य भिक्षु का जीवन और जीवन दर्शन

डॉ० छगनलाल शास्त्री, पी-एच० डी०, बिहार वि० वि० १९६८, अप्रकाशित ।

राजनीति, इतिहास, पुरातत्त्व तथा अन्य

पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ़ॉम जेन सोर्सेज़ [अँगरेज़ी]

डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी, पी-एच० डी०, का० वि० वि०, १९५४, सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर द्वारा प्रकाशित ।

सोमदेव : ए पोलिटिकल थिंकर [हिन्दी]

डॉ० पुष्यमित्र जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९६४, अप्रकाशित ।

नीतिवाक्यामृत में राजनीतिक आदर्श और संस्थाएँ [हिन्दी]

डॉ० एम० एल० शर्मा, पी-एच० डी०, लखनऊ वि० वि० १९६५, अप्रकाशित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन पोलिटी [अँगरेज़ी]

डॉ० श्यामसिंह जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९५५, अप्रकाशित।

स्टडी इन द जैन सोर्सेज़ ऑव द हिस्टरी ऑव द एनसिएंट इंडिया (१००० बी० सी० से ९०० ए० डी० तक) [अँगरेज़ी]

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, पी-एच० डी०, आगरा वि० वि० १९५६, अप्रकाशित।

कन्नड़ शासनों का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ० चिदानन्द मूर्ति, पी-एच० डी०, मैसूर वि० वि०, प्रकाशित।

जैनिज्म इन राजस्थान [अँगरेज़ी]

डॉ० कैलाशचन्द्र जैन, पी-एच० डी०, राजस्थान वि० वि० १९५६, जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर द्वारा प्रकाशित।

ऐन्शिएन्ट सिटीज़ इन राजस्थान (ए स्टडी ऑव कल्चर एण्ड सिविलीजेशन) [अँगरेज़ी]

डॉ० कैलाशचन्द्र जैन, डी० लिट्०, राजस्थान वि० वि० १९६४, मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित।

जैन सिस्टम ऑव एजूकेशन [अँगरेज़ी]

डॉ० नारायण अनन्त देशपाण्डे, पी-एच० डी०।

भट्टारक सम्प्रदाय

डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर, पी-एच० डी०, नागपुर वि० वि० १९५९, जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर द्वारा प्रकाशित।

एलीमेन्ट्स ऑव जैन आइकोनोग्राफ़ी [अँगरेज़ी]

डॉ० उमाकान्त शाह, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०, अप्रकाशित।

जैन आइकोनोग्राफ़ी मेनली इन श्वेताम्बर [अँगरेज़ी]

डॉ० एस० सी० उपाध्याय, पी-एच० डी०, बम्बई वि० वि०।

जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान [हिन्दी]

डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, पी-एच० डी०, राजस्थान वि० वि०, साहित्य-शोध विभाग, श्री महावीर जी द्वारा प्रकाशित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वीकृत शोध विषय

आगमिक तथा दार्शनिक साहित्य

आचारांग सूत्र
  श्री जगदीशनारायण शर्मा, प्राकृत विद्यापीठ, वैशाली

सूयगडं
  श्री श्रीकान्त त्यागी, प्राकृत विद्यापीठ, वैशाली

नायाधम्मकहाओ
  श्री वी० व्ही० मोहरिल, नागपुर वि० वि०

अर्धमागधी उपांग साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन
  श्री रमेशचन्द्र जैन, जबलपुर वि० वि०

जैन दर्शन में आत्मद्रव्य विवेचन और समीक्षा

जैन दर्शन में आत्मविचार : तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन
  श्री लालचन्द्र जैन, का० वि० वि०
  श्री मुक्ताप्रसाद पटेरया, लालबहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली

जैन योग का आलोचनात्मक अध्ययन
  श्री अर्हद्दास डिगे, का० वि० वि० (प्रबन्ध परीक्षार्थ प्रस्तुत)

अकलंक और धर्मकीर्ति के प्रमाणशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
  श्री उदयचन्द्र जैन, का० वि० वि०

प्रमेयकमलमार्तण्ड का आलोचनात्मक अध्ययन
  सुश्री निर्मला जैन, का० वि० वि०

जैन मिस्टीसिज्म (Jaina Mysticism)
  सुश्री शान्ति जैन, उदयपुर वि० वि०

गणित और ज्योतिष के विकास में जैन कवियों का योगदान
  श्री मुकुटबिहारीलाल अग्रवाल, आगरा वि० वि०

जैन गणित
  श्री हरिश्चन्द्र गर्ग, आगरा वि० वि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वार्थसिद्धि का समालोचनात्मक अध्ययन
श्री सन्मतकुमार जैन, का० वि० वि०

संस्कृत काव्य, पुराण और नाटच साहित्य

धनञ्जयकृत द्विसन्धान महाकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
श्री शिवदत्त गुप्त, आगरा वि० वि० (प्रबन्ध परीक्षार्थ प्रस्तुत)

वरांग चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन
श्री वाचस्पति द्विवेदी, मगध वि०वि०

जैन संस्कृत महाकाव्यों में रस विवेचन
सुश्री पुष्पा अग्रवाल, दिल्ली वि० वि०

संस्कृत गद्य में गद्यचिन्तामणि का स्थान और समीक्षात्मक अध्ययन
श्री भगवतशरण शर्मा, आगरा वि० वि०

वादीभसिंह सूरि और उनका काव्य
श्री शीलचन्द्र जैन, विक्रम वि० वि०

ए क्रिटिकल स्टडी ऑव तिलकमंजरी ऑव धनपाल
श्री एस० के० शर्मा, कुरुक्षेत्र वि०वि०

महाकवि जिनहर्ष : एक अनुशीलन
श्री ईश्वरप्रसाद शर्मा, राजस्थान वि० वि०

संस्कृत स्तोत्र-साहित्य में आचार्य समन्तभद्र का स्थान
श्री गणेशीलाल जैन, आगरा वि० वि०

पद्मपुराण तथा रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण का तुलनात्मक अध्ययन
श्री शिखरचन्द्र जैन, आगरा वि० वि०

रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण का काव्यात्मक तथा सांस्कृतिक अध्ययन
श्री महेन्द्रकुमार जैन, मगध वि० वि०

जैन पुराणों में नारी
श्रीमती आशा मलैया, सागर वि० वि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत नाट्य साहित्य में जैन नाटककारों का योगदान
श्री रामनाथ पाठक, मगध वि० वि०
रूपककार हस्तिमल्ल और उनका नाट्य साहित्य
श्री कन्छेदीलाल जैन, मगध वि० वि०

अपभ्रंश साहित्य

कवि स्वयम्भू
श्री संकठा प्रसाद उपाध्याय, आगरा वि० वि०
ए क्रिटिकल स्टडी ऑव महाकवि पुष्पदन्ताज़ वर्कस् इन अपभ्रंश लिटरेचर
श्री डी० बी० पठान, बम्बई वि० वि०
जंबूसामिचरिउ : वस्तु और शिल्प
श्रीमती सरोजिनी टफरिया, इन्दौर वि० वि०
करकंडचरिउ : सन्दर्भ, शिल्प और भाषा
श्री धन्नालाल जैन, इन्दौर वि० वि०
पुष्पदन्त का कृष्ण और रामकाव्य
सुश्री मेहशी कपूर, इन्दौर वि० वि०
रूपक काव्य परम्परा तथा अपभ्रंश के रूपक काव्य
श्रीमती सरोजनी जैन, रायपुर वि० वि०
जोइन्दु तथा कबीर की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन
श्री देवकुमार जैन, रायपुर वि० वि०
प्राकृत और अपभ्रंश : उनका डिंगल साहित्य पर प्रभाव
श्री जी० डी० शर्मा, राजस्थान वि० वि०
अपभ्रंश कथा काव्यों के शिल्प का हिन्दी प्रेमाख्यानकों के शिल्प पर प्रभाव
श्री प्रेमचन्द्र जैन, का० वि० वि० (प्रबन्ध परीक्षार्थ प्रस्तुत)
अपभ्रंश जैन प्रेमाख्यानक काव्य
श्री पारसमल जैन, आगरा विश्वविद्यालय ।
अपभ्रंश और हिन्दी के चरित काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन
डॉ० जितराम शर्मा, मगध वि० वि० (डो० लिट्-हेतु)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश चरित काव्यों में शृंगार-भावना
श्रीमती स्नेहलता कासलीवाल, इन्दौर विश्वविद्यालय
पउमचरिउ तथा रामचरितमानस के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन
श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा, गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय

क्षेत्रीय भाषाएँ तथा हिन्दी साहित्य

अपभ्रंश भाषा के विकास क्रम में पश्चिमी राजस्थानी
श्री जे० पी० कौशिक, राजस्थान विश्वविद्यालय
महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ
श्री एस० ए० स्वामी, राजस्थान विश्वविद्यालय
विक्रम की अठारहवीं शती का राजस्थानी जैन साहित्य
श्री वसन्तलाल वर्मा, राजस्थान विश्वविद्यालय
तेरापन्थी सम्प्रदाय का राजस्थानी और हिन्दी साहित्य
श्री बी० एन० पुरोहित, राजस्थान विश्वविद्यालय
रासा साहित्य
श्री जगवीर किशोर जैन, आगरा विश्वविद्यालय
हिन्दी जैन चरित काव्य
श्री श्रीकान्त खण्डेलवाल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
जैन विलास काव्यों का उद्भव और विकास
श्री विमल जैन, इन्दौर विश्वविद्यालय
महाकवि भूधरदास
श्री ब्रजेन्द्रसिंह चौहान, अलीगढ़ विश्वविद्यालय
हिन्दी गद्य साहित्य को जैन लेखकों की देन
श्री चन्द्रपाल शर्मा, आगरा विश्वविद्यालय
हिन्दी जैन पद साहित्य (१५वीं शती से आधुनिक काल तक)
श्री गोकुलप्रसाद जैन, आगरा विश्वविद्यालय
हिन्दी का पूजा साहित्य
सुश्री कृष्णा वार्ष्णेय, अलीगढ़ विश्वविद्यालय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी में जैन कथा साहित्य

श्री फूलचन्द्र जैन, आगरा विश्वविद्यालय

टोडरमल : व्यक्तित्व और कृतित्व

श्री हुकुमचन्द्र भारिल्ल, इन्दौर विश्वविद्यालय

जैन सिद्ध और नाथों को मुक्त काव्यधारा का तुलनात्मक अध्ययन

सुश्री स्वर्णलता श्रीवास्तव, इन्दौर विश्वविद्यालय

जैन साहित्य में राम कथा

श्री अक्षयकुमार जैन, इन्दौर विश्वविद्यालय

अभिनव पम्पकृत जैन रामायण

श्री संगमनाथ, धारवाड़ विश्वविद्यालय

हिन्दी में राम-विषयक जैन साहित्य

श्री कल्याणचन्द्र जैन, आगरा विश्वविद्यालय

सधारु कृत प्रद्युम्न चरित्र के विशेष सन्दर्भ में प्रद्युम्नचरित काव्य का तुलनात्मक तथा आलोचनात्मक अध्ययन

श्री मदनगोपाल शर्मा, राजस्थान विश्वविद्यालय

संस्कृति, पुरातत्त्व, अभिलेख, मूर्तिकला आदि

आशाधर कृत सागारधर्मामृत के विशेष सन्दर्भ में प्राचीन जैन गृहस्थाचार का सांस्कृतिक अध्ययन

श्री पूर्णचन्द्र जैन, सागर विश्वविद्यालय

जैन साहित्य में प्रतिपादित शिक्षा तत्त्व

श्री निशानन्द शर्मा, पटना वि० वि०

प्राकृत शिलालेखों का आलोचनात्मक अध्ययन

श्री चन्द्रदेव राय, मगध विश्वविद्यालय।

भारतवर्ष का प्राचीन भगोल जैन स्रोतों के अनुसार (७०० से १२०० ईसवी तक)

श्री संकठाप्रसाद, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ाचीन एवं मध्यकालीन मालवा में जैन धर्म

श्री तेजसिंह गौड़, विक्रम विश्वविद्यालय

मध्यप्रदेश में जैन धर्म का विकास (१२०० ई० तक)

श्री गोपीलाल अमर, सागर विश्वविद्यालय

मध्यप्रदेश और राजस्थान में भट्टारकों का उद्भव और विकास

श्री चम्पालाल सिंघई, विक्रम विश्वविद्यालय

मध्यप्रदेश के प्राचीन जैन अभिलेखों का अध्ययन

श्री कस्तूरचन्द्र जैन, सागर विश्वविद्यालय

देवगढ़ की जैन कला का सांस्कृतिक अध्ययन

श्री भागचन्द्र जैन, सागर विश्वविद्यालय

आहारक्षेत्र की मूर्तियों और शिलालेखों का आलोचनात्मक अध्ययन

श्रीमती शान्ति जैन, आगरा विश्वविद्यालय

दक्षिणी बुन्देलखण्ड की कला का समीक्षात्मक अध्ययन

श्री प्रकाशचन्द्र सिंघई, सागर विश्वविद्यालय

पश्चिमी भारत के जैन मन्दिर

श्री हरिहर सिंह, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सोसाइटी एण्ड कल्चर ऑव वेस्टर्ड इण्डिया

(1000 to 1500 A. D.)

श्री तोलाराम शर्मा, पंजाब विश्वविद्यालय

श्रवणबेलगोल एण्ड इटस् मोनोमेण्टस्

श्री शेहर, करनाटक विश्वविद्यालय

जैन हिस्टरियोग्राफी

कु० मंजु वर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अहिहोल : इटस् हिस्ट्री एण्ड मोनोमेण्टस,

श्री राजशेखर, करनाटक विश्वविद्यालय

—गो० च०

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वविद्यालयों में जैन विद्याओं की अध्ययन-व्यवस्था

१

इन्दौर विश्वविद्यालय

इन्दौर विश्वविद्यालय में प्राकृत, अपभ्रंश, पाली, जैन धर्म एवं संस्कृति विषयों को पढ़ाया नहीं जाता है। परन्तु संस्कृत, हिन्दी, दर्शन एवं इतिहास आदि विषयों के साथ अध्ययन की व्यवस्था है।

—चन्द्रप्रकाश मोदी, इन्दौर
सहायक रजिस्ट्रार (शैक्षणिक)

उदयपुर विश्वविद्यालय

उदयपुर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में जैन दर्शन के अध्ययन की व्यवस्था है किन्तु वह पाठ्यक्रम तक ही सीमित है। भविष्य में जैन दर्शन के पाठन की कोई सम्भावना नहीं है, किन्तु जैन दर्शन पर शोध कर्ताओं को पूरा प्रोत्साहन है।

—कमलचन्द सोगानी,
अध्यक्ष दर्शन विभाग

गुजरात

सारे गुजरात में अहमदाबाद की एल० डी० आर्टस् कालेज और हमारी कालेज में ही मुख्य अर्धमागधी (Special Course in Ardhamagadhi) पढ़ाने का प्रबन्ध है। अकेले गुजरात विश्वविद्यालय से संलग्न क़रीब ९० कॉलेज हैं। गुजरात में और भी चार विश्वविद्यालय हैं किन्तु सारे गुजरात में दो ही जगह अर्धमागधी पढ़ाने का प्रबन्ध है।

—प्रो० के० एम० पटेल, पाटन,
प्राध्यापक अर्धमागधी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ो विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र में एक प्रश्नपत्र जैन तथा बौद्ध दर्शन का है। संस्कृत तथा हिन्दी विषयों में पाली तथा प्राकृत के एक-एक प्रश्न-पत्र वैकल्पिक रूप से लिये जाते हैं।

—राजगोपाल अय्यर, रजिस्ट्रार

नागपुर विश्वविद्यालय

नागपुर विश्वविद्यालय में पूर्व-विद्यापीठ से ले कर एम० ए० तक प्राकृत विषय पालि के साथ पढ़ाया जाता है। अभी तक स्वतन्त्र रूप से उस के अध्यापन की व्यवस्था नहीं की जा सकी। भविष्य में फ़िलहाल ऐसी कोई सम्भावना भी नहीं दिखाई देती। वर्तमान में दो अध्यापक हैं—(१) डॉ० भागचन्द्र जैन, प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, (२) श्रीमती पद्मा किल्लेदार, प्राध्यापक।

सम्बद्ध महाविद्यालयों में तीन और प्राध्यापक हैं—(१) श्री प्रो० जगदीश चन्द्र किल्लेदार, नागपुर महाविद्यालय, (२) श्रीमती पाण्डेय, नागपुर महाविद्यालय, श्री प्रो० वाघमारे, अम्बेडकर महाविद्यालय।

—डॉ० भागचन्द्र जैन, नागपुर

पूना विश्वविद्यालय

Ardhamagadhi and Pali are studied in the University of Poona as subordinate subjects only by the post-Graduate students. There is no teaching arrangement or the special papers in these subjects.

No research work, therefore has been done so far as an organised effort of the University. However, two veteran scholars—Dr. P. L. Vaidya and Dr. P. V. Bapat have individually done work of outstanding merit in Pali, Prakrit and Apabhransa languages.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

The future also does not seem to be very bright in this University for research in Jainism, Buddhism, Prakrits and Apabhransa.

A resolution has been passed last year in the Board of Sanskrit and Prakrit languages to the effect that at least a Reader should be appointed for Research in and teaching of Ardhamagadhi, Pali and Apabhransa.

Two selections (No. 1 and No. 2) are prepared in Ardhamagadhi and Pali at the B. A. level and they are published by our University.

—*Assistant Registrar (Acad.)*

बम्बई विश्वविद्यालय

Bombay University provides instructions for Ardhamagadhi from B. A. degree to Ph. D. degree and the department of Sanskrit is the main and Ardhamagadhi and Pali Studies are guided by the college Professors as well as the University teachers. Prakrit is not a seperate Department.

—*Dr. P. M. Upadhye*

बड़ौदा विश्वविद्यालय

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय (बड़ौदा) के हिन्दी विभाग के एम० ए० के कक्षाओं में बीसलदेव रासो, सन्देश रासक (अब्दुर्रहमान) तथा अपभ्रंश पाठावली में से पुष्पदन्त का वसुदेव घरच्चउ पाठ्यक्रम में रहे हैं। इन तीन में दो का अध्ययन अदल-बदल कर के कराया जाता रहा है। इस के अतिरिक्त पृथ्वीराज रासो का रेवातट समय सम्प्रति पढ़ाया जा रहा है।

—मदनगोपाल गुप्त, बड़ौदा,
अध्यक्ष हिन्दी विभाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय

Marathwada University has no provision of the study of Prakrits though the area is very rich for the study of Prakrits—old Marathi, Mahãnubhāva literature etc. Many students offer two papers of Prakrits for B. A. (Gen.) or for M. A. Examinations but the number of Honours students in Ardhamagadhi is very negligible. Most of the students offer Sanskrit as their principal subject at all levels.

—*Dr. P. M. Upadhye*

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

विक्रम विश्वविद्यालय में तीन विभागों के अन्तर्गत उक्त विषयों का अध्यापन होता है—संस्कृत, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास तथा हिन्दी। हिन्दी विभाग में अपभ्रंश का एक वैकल्पिक पत्र एम० ए० में निर्धारित है। प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास विभाग में जैन धर्म एवं संस्कृति का साधारण ज्ञान दिया जाता है।

संस्कृत विभाग में एम० ए० के आठ पत्रों में एक पत्र का नाम है पालि, प्राकृत एवं भाषा विज्ञान। इस पत्र के अन्तर्गत प्राकृत भाषा, व्याकरण एवं साहित्य का साधारण ज्ञान छात्रों को कराया जाता है। संस्कृत एम० ए० का प्रथम पत्र है "वैदिक साहित्य का इतिहास तथा प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास" इस पत्र में भारत के सांस्कृतिक इतिहास के अन्तर्गत जैन धर्म एवं दर्शन का साधारण ज्ञान छात्रों को कराया जाता है। स्वतन्त्र विभाग के रूप में प्राकृत, अपभ्रंश एवं जैन धर्म एवं दर्शन का अध्यापन नहीं होता है।

—वि० वेंक्टाचलम्, उज्जैन
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिहार के विश्वविद्यालयों में प्राकृत अध्ययन-अध्यापन

बिहार प्रदेश में पटना, बिहार, राँची, भागलपुर और मगध में पाँच विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं। इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त दरभंगा में संस्कृत विश्वविद्यालय भी संस्कृत वाङ्मय के उच्चाध्ययन में प्रयत्नशील है।

प्राकृत भाषा और साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से बिहार और मगधविश्वविद्यालय ही उल्लेख्य हैं। बिहार विश्वविद्यालय में प्राकृत की स्नातकोत्तर परीक्षाओं का प्रबन्ध है। इस विश्वविद्यालय के क्षेत्र में वैशाली प्राकृत शोध प्रतिष्ठान स्थित है। इस शोध संस्थान में स्नातकोत्तर प्राकृत अध्ययन एवं शोध-खोज का कार्य सम्पादित होता है और परीक्षाएँ बिहार विश्वविद्यालय लेता है। अतः स्पष्ट है कि विश्वविद्यालय में प्राकृत अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं है, किन्तु वह वैशाली शोध प्रतिष्ठान के छात्रों की परीक्षा लेता है और अपने यहाँ से उत्तीर्ण व्यक्तियों को उपाधि प्रदान करता है। स्नातक कक्षाओं तक प्राकृत विषयक शिक्षा का प्रबन्ध इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कहीं भी नहीं है।

मगधविश्वविद्यालय, गया के अंगीभूत एच० डी० जैन कालेज आरा में स्नातक कक्षा तक अध्ययन का प्रबन्ध है। प्राक् विश्वविद्यालय कक्षा से लेकर बी० ए० और प्रतिष्ठा कक्षा पर्यन्त एक विषय के रूप में प्राकृत की शिक्षा दी जाती है। इस विश्वविद्यालय में स्नातक कक्षा तक प्राकृत पढ़नेवाले छात्रों की संख्या लगभग चार सौ है। शोध-खोज करनेवाले अनुसन्धित्सु प्राकृत विषय लेकर एच० डी० जैन कालेज आरा और श्री देवकुमार जैन ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट आरा में शोध कार्य भी करते हैं।

मगध विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में संस्कृत एम० ए० के पाठ्यक्रम में एक ग्रूप प्राकृत भी है। इस ग्रूप में तीन पत्र होते हैं। जो छात्र प्राकृत विषय लेकर बी० ए० और प्रतिष्ठा कक्षाएँ उत्तीर्ण करते हैं, वे संस्कृत एम० ए० में प्रविष्ट हो प्राकृत ग्रूप लेते हैं। विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राकृत अध्ययन की व्यवस्था है, वहाँ एक प्राकृत प्राध्यापक भी नियुक्त हैं। अतः विश्वविद्यालय की ओर से केवल मगध विश्वविद्यालय में ही अध्ययन का प्रबन्ध है, अन्य विश्वविद्यालयों में नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागलपुर विश्वविद्यालय में बी० ए० कक्षा तक प्राकृत का पाठ्यक्रम तो बना है, पर उस का अध्ययन-अध्यापन नहीं होता। हिन्दी एम० ए० के पाठ्यक्रम में पटना, राँची, विहार, भागलपुर और मगध विश्वविद्यालय में एक प्रश्नपत्र प्राकृत और अपभ्रंश का निर्धारित है, पर इस पत्र के विषयों की पढ़ाई नहीं होने के कारण उक्त विषय के अध्ययन से छात्र वंचित रह जाते हैं। दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में जैनदर्शन और प्राकृत ग्रन्थ निर्धारित हैं, पर अध्यापन की व्यवस्था न रहने के कारण उक्त पाठ्यक्रम में छात्र सम्मिलित नहीं होते। राँची विश्वविद्यालय में न तो प्राकृत के अध्ययन की व्यवस्था है और न संविधान में उसे स्थान ही प्राप्त है। इस प्रकार विहार और मगध विश्वविद्यालय में प्राकृत अध्ययन को स्थान प्राप्त है। इन विश्वविद्यालयों के दर्शन विषयक स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में जैनदर्शन का भी एक पत्र या पत्र का कुछ अंश निश्चित है। इस अंश का अध्यापन होता है।

—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

अध्यक्ष संस्कृत-प्राकृत, ह० द० कालेज, आरा

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

Shivaji University, Kolhapur has a full course in Ardhamagadhi (i. e. Prakrit) from the Ph. D. to M. A. At B. A. there are 7 papers and at M. A. there are 6 papers. In some of the papers Apabhramsha texts are prescribed and one or two papers at M. A. are devoted to Jaina Philosophy.

—Registrar

S. N. D. T. University for women

This University has a provision of Ardhamagadhi studies but the subject is not taught either at the collage level or at the University Department.

—*Dr. P. M. Upadhye*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन परम्परा की संस्थाओं में जैन विद्या का अध्ययन

०

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

पूर्व समय में जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन के लिए राजकीय व्यवस्था होने का कोई उल्लेख मेरे देखने में नहीं आया। समाज की ओर से भी सामूहिक रूप से कोई बड़ी शिक्षा संस्था संचालित किये जाने के भी उल्लेख मेरे दृष्टिगोचर नहीं हुए। फिर भी जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया कमोवेश रूप में बराबर चलती रही है। इस दृष्टि से मुनि संस्था का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन का सचल केन्द्र मुनि संस्थाएँ थीं। जब वन-विहारी मुनियों ने नगरस्थ जिनालयों को अपना आवास बनाया और उस में से भट्टारक पन्थ का उदय हुआ तब भी वह प्रक्रिया चलती रही। श्रावक भी अपने बालक-बालिकाओं को जैन विद्या के अध्ययन के लिए उन्हीं के पास भेजते थे। उत्तर काल में भी श्रावकों में स्वाध्याय की परम्परा का प्रचलन होने से जैन-विद्या का अध्ययन-अध्यापन चालू रहा और पं० टोडरमल जी, पं० जयचन्द जी जैसे जैनविद्या के धुरन्धर पण्डित होते रहे।

जैन विद्या के आधुनिक अध्ययन की परम्परा को प्रवर्तित करने वाले गुरुवर्य पं० गोपालदास जी का भी अध्ययन इसी प्रकार की प्रचलित परम्परा के अनुसार हुआ था। उन्हों के प्रयत्न से पहले मथुरा में महाविद्यालय की स्थापना हुई थी और उस के पश्चात् पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी ने बनारस में स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना की थी। इन दोनों महाविद्यालयों को स्थापना से भी पूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खुर्जा में एक अच्छी पाठशाला थी। गुरुवर्य गोपालदास जी ने प्रारम्भ में अपने पास एक-दो छात्रों को रख कर संस्कृत, प्राकृत के मौलिक जैन ग्रन्थों का पठन-पाठन शुरू किया। सन् १९१० में सम्मेद शिखर पर हुए गजरथ महोत्सव के अवसर पर उन्होंने यह भावना व्यक्त की कि हम कुछ छात्रों को जैन विद्या का अध्ययन कराना चाहते हैं। तव स्याद्वाद महाविद्यालय से पांच विद्यार्थी गये और इस तरह मोरेना में जैन विद्यालय की स्थापना हुई। वर्णी जी महाराज ने सागर में भी एक पाठशाला स्थापित की थी। जिस ने महाविद्यालय का रूप लिया। सर सेठ हुकुमचन्द जी ने भी इन्दौर में एक महाविद्यालय की स्थापना की। इन सभी से जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन को वल मिला और उस का वहुत प्रसार हुआ। आज भी मथुरा महाविद्यालय को छोड़ कर शेष तीन महाविद्यालय तथा कुछ विद्यालय चलते हैं और उनमें जैन विद्या से सम्बद्ध ग्रन्थों का पठन-पाठन चलता है किन्तु आज से तीस वर्ष पूर्व की स्थिति से आज की स्थिति में बहुत अन्तर आया है।

उक्त प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में अध्ययन की परिपाटी आज भी वही है जो पचास वर्ष पूर्व थी। अध्यापक ग्रन्थ को पंक्तिशः या अक्षरशः पढ़ाता है। पहले विद्यार्थी ग्रन्थ के पण्डित वनते थे और साथ ही विषय के भी पण्डित वन जाते थे क्योंकि उन में ज्ञानार्जन की अभिरुचि थी। पढ़ते समय उन्हें यह विकल्प नहीं होता था कि इस विद्या का अध्ययन कर के क्या करेंगे। दिन भर पठन-पाठन में वीतता था, स्वयं पढ़ते थे और अपने से छोटों को पढ़ाते थे इस तरह प्रयोगात्मक शिक्षण भी साथ-साथ चलता था। छात्रों की अभिरुचि से आकृष्ट हो कर अध्यापक भी पढ़ाते थे। अब जीविका के विकल्प ने अध्ययन के रस को सोख लिया है। आज भी प्राचीन परिपाटी के विद्यालयों में जैनविद्या से सम्बद्ध ग्रन्थों का पठन-पाठन उसी प्राचीन प्रणाली से होता है। किन्तु छात्र परीक्षा पास करने की ओर से तो सचिन्त रहते हैं, विषय का पण्डित वनने की ओर उन का ध्यान नहीं है।

फिर भी इन विद्या संस्थाओं के कारण ही जैन विद्या का अध्ययन-अध्यापन जीवित है और अध्येताओं में से कुछ वीज अंकुरित हो कर वृक्ष का रूप भी लेते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं जिन में कालक्रम से फूल और फल भी लगते हैं। आवश्यकता है अध्येताओं को भाविजीवन की चिन्ता से मुक्त कर देने की। सब अध्येताओं के सम्बन्ध में तो यह सम्भव नहीं हो सकता। किन्तु जिन की रुचि उस ओर हो उन्हें तो प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए। प्रोत्साहन मिलने से तुलनात्मक अध्ययन की ओर रुझान हो सकता है उस की बड़ी कमी है। जैन विद्या को जैन ग्रन्थों के अध्ययन से जाना जा सकता है किन्तु उन में निहित तथ्यों का उद्घाटन तो तुलनात्मक अध्ययन से ही सम्भव है। आधुनिक युग में उस के बिना जैन विद्या का विकास सम्भव नहीं है। यह दोष केवल प्राचीन परम्परा के जैन विद्या केन्द्रों का नहीं है किन्तु प्राचीन परम्परा को सभी शिक्षा संस्थाओं की—संस्कृत विश्वविद्यालयों तक की—यही स्थिति है। जहाँ अध्यापकगण स्वयं ही उस से अनजान हों या उसे उपेक्षणीय समझते हों वहाँ उस की प्रणाली कैसे प्रचलित हो सकती है। यदि यह प्रणाली प्राचीन परम्परा की संस्थाएँ अपना लें तो उन में जो कमी है वह दूर हो सकती है किन्तु आज का प्रश्न है अध्येताओं को अभिरुचि जाग्रत् करने का, वह सम्भव न हो तो जिन में अभिरुचि है उन्हें तो बल देना ही चाहिए।

साथ ही ग्रन्थशः अध्ययन के साथ विषयगत अध्ययन पर भी बल देना आवश्यक है जैसे जैनाचार, अहिंसा, स्याद्वाद, प्रमाण, कर्मसिद्धान्त, अध्यात्म आदि। एक ही विषय को ले कर एक स्नातक अध्ययन करे तो विषय का परिमार्जन हो सकेगा। इन तथा कुछ अन्य सुधारों से प्राचीन परिपाटी की शिक्षा संस्थाओं में जैन विद्या का अध्ययन विशेष फलदायक हो सकता है। वैसे आज भी वह उपयोगी तो है।

—स्याद्वाद महाविद्यालय,
भदैनी, वाराणसी।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

PROBLEMS OF RESEARCH IN HINDI LITRATURE

Dr. Jagdish Chandra Jain

The period of modern Hindi literature begins from the origin of Khari Boli which is about a hundred years from now. The first D. D. (Doctor of Divinity) in Hindi was conferred in 1918 by the London University to J. N. Carpenter for his work 'Theology of Tulsidas'. Then Mohiuddin Qadari got his Ph. D. from the same University in 1930 on the subject 'Hindustani phonetics'. In 1931 Baburam Saksena got his D. Litt. from the Allahabad University on 'Evolution of Avadhi'. These degrees were conferred not for Hindi literature but for Hindi language. Thus the period from 1918–1931 may be called the beginning of research in Hindi.

The real work starts from 1931. The first thesis for D. Litt. was submitted in 1934 on 'The Nirgun school of Hindi poetry' to the Benares Hindu University by Pitambar Barthwal. Dhirendra Verma got his D. Litt. from Paris in 1935 for his work on 'Vrajabhasha'. Then, Ramashankar Shukla 'Rasala' worked on 'Hindī kāvyaśāstra kā vikāsa' and got his D. Litt. in 1937 from the Allahabad University.

The work of research made progress during the period 1938–1950. At this time theses-were submitted in the Uni-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

versities of Nagpur, Punjab, Agra, Calcutta, Patna, Lucknow and Rajasthan on various subjects and degrees were conferred. The chief amongst these works are 'Adhunik Hindi Sahitya (1850–1900 A.D.)' by Lakshamisagar Varshneya (Allahabad University, 1940), 'Tulsidas—Jeevani aur kritiyon kā samālochanātmaka adhyayana' by Vrajeshwar Verma (Allahabad, 1945), 'Hindi kavya men rahasyavadi pravritiyan' by Vrajamohan Gupta (Allahabad, 1946), 'Angrezi kā Hindi bhāshā aur sāhityā par prabhāva' by Vishvanath Mishra (Allahabad, 1950) and others. Up till now Pandit Ramachandra Shukla had produced a history of Hindi Literature in one volume, but now different periods of Hindi literature were studied in the form of theses. Formerly the study of literature was made with a missionary spirit but now the spirit became speculative.

From 1951 onward the research in Hindi made a rapid progress. The number as well wideness of subjects increased. The study of Apabhransha was unknown so far, but Ramsingh Tomar submitted his first thesis on 'Prakrit-Apabhransha kā sāhitya aur uskā Hindi Sāhitya par prabhāva' in 1951 in the Allahabad University. Dharmavir Bharti submitted his thesis on 'Siddha Sahitya' and Jagadish Gupta on 'Hindi aur Gujarati Krishana Kavya ka tulnatmaka adhyayana' in 1953. Then, Namvar Singh made a study of the language of Prithvirajaraso, and Devendrakumar Jain and Harivansha Kochad of Apabhransha Sāhitya.

Since Hindi was accepted a national language in 1955, the interest of scholars in Hindi increased and it was studied

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

more and more in non-Hindi speaking areas. There are certain problems with regard to studies in Hindi which may be noted here.

1. Due to economic uncertainty the students do not feel encouraged to devote their full time and energy towards the research with the result that they are unable to produce a work of standard.

2. After getting the post-graduate degree the students have no experience of research, therefore they need a proper guidance. Regular periods should be assigned so that the students can meet their guide often.

3. Without a well-equipped library it is not possible to carry out research work. Besides, the librarian should be well-versed in the subject so that he is able to point out the proper books and the articles in research journals.

4. Only a few and selected students should be admitted for research. Besides, the following points should be taken into consideration :

(1) The research should not be encouraged at the cost of creating writing. The research should be able to help the evaluation of literature.

(2) The medieval period of Hindi has been studied so for from literary point of view but now a study should be made with special reference to social, political and historical conditions of that period. The study should be critical and not only informative.

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

RESEARCH ON JAINA MATHEMATICS

Prof. Laxmi Chandra Jain

Purpose :

The researches on Jaina Mathematics aim at the development of a mathematico-philosophic model based on set-theoretic relations quoted in Prakrit texts, in order to know the past, present and future happenings (BHĀVAS) of all fluents (DRAVYAS), their controls (GUṆAS) and events (PARYĀYAS).

Object :

The object of such studies is devoted to set up parallel intensive scrutiny into the ancient and modern mathematical material through expositions and proper reorientation of ancient symbolism as well as technique used in commentaries of authentic Prakrit texts.

Introduction :

The domain of research on Jaina Mathematics can be divided into three broad aspects—Historical, Analytical and Applied. Apart from the Trilokasāra and detailed commentaries of Gommaṭasāra, Labdhisāra as well as Kṣhapaṇāsāra, there are now available the original texts, Tiloyapaṇṇatti and

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ṣaṭkhaṇḍāgama, wherein lie abundant material[1] ! Sources are also available in other texts on which Datta had contributed a survey article.[2]

Historical Researches :

One could find the complementary source material in the "History of Hindu Mathematics[3]", and in the articles contributed by Datta, Singh and Jain.[4] While carrying on historical researches the following points may be useful :

[1] Researches and advancement of mathematical details and technique were, except in few cases, usually ascribed to the school or the predecessors.

[2] The field of mathematics was clearly divided into the universal (LOUKIKA) and the post-universal (LOKOTTARA).

The maximum attainment in the universal mathematics appears in Gaṇita Sāra Saṃgraha[5]. Simple mathematics was applied for studies in Astronomy[6] and Astrology.

[3] The post-universal mathematics was de facto a set-theoretic approach for formulating a model of cosmological structure with many relational details. The construction of such a theory demands a need or an evolution of extraordinary mathematical concepts and methods.

---

1. Cf. Bh, Nc and Vi.
2. Cf. Da_1 and Da_3
3. Cf. Da_4
4. Cf. Da, Si and Jlc.
5. Cf. Ma.
6. For comparative historical studies, Cf. Neugebaner, O., The Exact Sciences in Antiquity, Providence, 1957.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[4] Mensuration studies were inspired for a study into the geometrical forms of contents of the conceptual universe which was endowed with specified measures of time and space through finite and transfinite sets.

Analytical Researches :

This aspect of research would first consist in the study of basic definitions and principles along with their consistent use and results in accordance of their presentation in Prakrit texts. This would lead to an axiomatic way or otherwise and present a model for logical, intuitionistic or other type of inquiry.[7]

Next might be the probe into the analytical methods evolved for a set-theoretic access. The methods of logarithms, spread and give, cut, reason, removal, one to one correspondence, comparability, sequences &c are the tools for locating or ordering the magnitude of various types of fixed and varying transfinite sets and numbers associated with cosmological fluents or entities and their properties.

The classification of sets of souls on the basis of control-stations (GUṆA-STHĀNAS) and rummage-stations (MĀRGAṆĀ-STHĀNAS)[8] is propounded on the basis of fluent, quarters, time and knowledge; as well as relative to being, sum, quarters, pervasion, time interval and comparability. The knowledge of the fluents as well as that of influx,

7. Cf. Wi.

8. Cf. Ne, Gommaṭasāra Jīva Kāṇḍa, v. 9 and 10, v 142. Aport from these, for other details cf. Ne, v. 2.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

bond, restraint, partial & complete decay of karmas is exposed through denotation, ownership, means, basis, stay-duration and design.[9]

The above may stimulate parallel study into modern theory of sets and general topology. Biological depitions in Prakrit texts overflow with such mathematical details as may supply enough matter for topological studies. Rashevsky remarks, "But we cannot discount the other possibility, namely that appropriate topological spaces have not yet been studied and that the needs of biology may provide a stimulus to the topologist to make new discoveries in his field, just as the needs of physics have provided in the past the stimulus for new mathematical discoveries"[10]

Applied Researches :

The fundamental units of measure are instant (SAMAYA) for extra-deductional (VYAVAHĀRA) time and point (pradeśa) for space. These are defined on the basis of the location and motion of a material ultimate-particle (PUDGALA-PARAMĀṆU). The everlasting entities are the fluents viz, souls, matter, time-atoms (KĀLĀṆUS), space (ĀKĀŚA), motion-causality-continuum (DHARMA), and rest-causality-continuum (ADHARMA).[11]

The becomings of the worldly souls and material-particles have certain interactions and modify according to

9. Cf, Jsa, v. 5, 7, and 8 of chaper I.
10. Cf. Ra, vol, 2, p. 409.
11. Cf. Jgr.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

prevailing circumstances. Occurrence of tne modifications or events of becomings in each fluent is the consequential function of the numbers of the indivisible-corresponding-sections (AVIBHĀGIPRATICCHEDA) of its own controls (GUṆAS). This appears to be a complicated problem leading to natural phenomena in presence of fields

Bond of material ultimate-particles takes place only by virtue of their affine (SNIGDHA) and anti-affine (RUKSHA) touch (SPARŚA) controls. An ultimate-particle gets united in bond with the one which differs in the affine and anti-affine control-units by two, and in the process of bonding, the exceeding one is potent.[12]

The relation between soul and karma is non-ab-initio (ANĀDI) relative to generation.[13] Owing to procreation through the becomings of mundane soul, kinetic-event (KRIYĀ) along with potential-event (PARIṆĀMA) is called karma and the matter procreated to potential-change (PARIṆAMANA) at the very instant (SAMAYA) due to instrumentality (NIMITTA) is also known as karma.[1]

Just as matter is procreated to potential-change due to instrumentality of soul's potential-events, similarly mundane soul is procreated to potential-change due to instrumentality of material karmas at the very instant.

Various types of karmic bonds and their fate is discussed

12. Cf. Jsa, v. 33 et seq. of chapter v.
13. Cf. Nc, Gommaṭasāra Karma Kāṇḍa, v. 2.
14. Cf. Bh, pp. 45-47.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

in mathematical details in terms of instant-bond (SAMAYA-PRABADDHA). This again is put to analytical survey through chains of karmic matter in terms of variable [ultimate-particles] (VARGAS), classes of variables (VARGAṆĀS), &c.

The foremost problem is to correlate the ancient knowledge of natural sciences with that of the frontiers of modern knowledge, in applied aspect.

The theory of knots and the theory of braids are suggestive of topological approaches to mathematical biology. Topology is a geometry of relations rather than of quantities. Very many biological phenomena, and perhaps the most basic of them, are not quantitative but relational. In ṢAṬKHAṆḌĀGAMA relational statements form the main bulk of the texts. Topological biology attempts at geometrization of biology. In this light, it seems fruitful to start recognizing various types of sets and their relations appearing in Prakrit texts.

Conclusion **:**

The above survey depicts only few of the vivid and prospective aspects of research pursuits of Jaina Mathematics. The practical utility of knowledge for the well-being of all is of fundamental importance, and for effecting it, very deep and exhaustive inquest through a team of researchers is most essential.

The following bibliography will supply enough material for a student interested in research on Jaina Mathematics.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Bibliogrophy :

Bh : Bhūtabalī, Mahābandho, Kashi, (1947), et seq.

Ca : Cantor, G., Contributions to the founding of the theory of transfinite numbers, Illinois, (1952)

Da_1 : Datta, B. B., The Jain School of Mathematics, Bul. Cal. Math. Soc., vol. XXI, (1929), pp. 115–145.

Da_2 : Datta, B. B., Mathematics of Nemi Chandra, The Jain Antiquary, vol. 1, No. II, Arrah, (1935), pp. 25–44.

Da_3 : Datta, B.B., A lost Jain Treatise on Arithmetic, The Jain Antiquary, vol. II, No. II, (1936), pp. 38–41.

Da_4 : Datta, B.B. and Sing, A.N., History of Hindu Mathematics, Parts I and II. Bombay, (1962).

Fr : Fraenkel, A. A., Abstract Set Theory, Amsterdam, (1953)

Hau : Hausdorff, F., Set Theory, New York, (1962).

Jgr : Jain, G.R., Cosmology old and new, Lucknow, 1942.

Jjl : Jaini, J.L., Jaina Gem Dictionary, Arrah, (1918).

Jlc_1 : Jain, L C., Tiloyapaṇṇatti Kā Gaṇita, Reprinted from introduction to Jambū divapaṇṇatti Saṃgaho, Sholapur, (1958), pp. 1–109.

Jlc_2 : Jain, L.C., On the Jain School of Mathematics, Chotelal Smṛiti Grantha, Calcutta; (1967), pp. 265–292,

Jsa : Jain, S.A., Reality, English Translation of Shri Pūjyapādaś Sarvārthasiddhi, Calcutta, (1960).

Ko : Kowalsky, H.J., Topological Spaces, New York,(1965)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ma : Mahāvīrācārya, Gaṇita Sāra Saṃgraha, Sholapur, (1963).

Nem : Nemicandrācārya, Gommaṭasāra, Labdhisāra and Kṣhapaṇāsāra, including Ṭodaramala's Artha Saṃdṛiṣṭi of the above texts, etc., Gandhi Hari Bhai Devakaraṇa Jain Granthamālā, Calcutta, (Date of publication not mentioned).

Nee : Needham, J., Science and Civilisation in China, vol. 1 Cambridge, (1954), et seq.

Ra : Rashevsky, N., Mathematical biophysics Physico-Mathematical Foundations of Biology, vol. 1&2, Dover, (1960)

Si$_1$: Singh, A.N., Mathematics of Dhavalā I, Ṣaṭkhaṇḍāgama, vol. IV, Amaraoti (1942), pp. V–XXI.

Si^2 : Singh, A.N., History of Mathematics in India from Jain Sources; The Jain Antiquary; vol. XV, No. II (1949); & vol XVI, pp. 46-53
No. II, (1950), pp. 54–69.

Vi : Vīrasenācārya : Dhavalā Tīkā Samanvitaḥ Ṣaṭkhaṇḍāgama, (Amaraoti & later from other places), vol. III (1941), vol. IV (1942), et seq.

Wi : Wilder, R.L., Introduction to foundation of mathematics, New York, (1952)

Ya : Yati Vṛisabha, Tiloya Paṇṇatti, Sholapur, Bhāga 1 (1943), Bhāga 2 (1951).

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Zl : Zlot, W., The Role of the Axiom of Choice in the Development of the Abstract Theory of Sets", Lib. of Congress No. Mic 57–2764, (Doctoral Thesis, Columbia University), (1957).

Appendix

The following equation will give an idea of one of the possible forms of chain bonds of karma :

$$B^{2}_{22} = C^{2\{i(Sg_1+1)\}}_{\left(\frac{v}{2}-\frac{i}{2}\cdot\frac{d}{2}\right)} + C^{2\{i(Sg_1+1)\}+1}_{\left\{\frac{v}{2}-\left(\frac{i}{2}+1\right)\frac{d}{2}\right\}}$$

$$+ C^{2\{i(Sg_1+1)\}+2}_{\left\{\frac{v}{2}-\left(\frac{i}{2}+2\right)\frac{d}{2}\right\}} + \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$+ \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots C^{3\{i(Sg_1+1)\}-1}_{\left\{\frac{v}{2}-\left(2.\frac{i}{2}-1\right).\frac{d}{2}\right\}}$$

where B^{2}_{22} represents the Bonded fluent (BANDHA DRAVYA) in the second Super-classing (SPARDHAKA) of second Geometric-Regression. (GUṆAHANI). C is the Classing (VARGAṆA). Sg_1 is number of Super-Classings in the first Geometric-Regression. V is the number of Classes (VARGAS) or ultimate-particls of matter with the same number of indivisible Corresponding sections "i" of touch control. "d" is the common difference.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

A FEW OBSERVATIONS ON

THE SCOPE OF JAINOLOGICAL STUDIES

Dr. A. N. Upadhye, M.A., D.Litt

Jainology connotes a department of knowledge or a branch of study dealing with the history of Jainism, Jaina antiquities, Jaina philosophy and religion and the contributions of Jaina authors in the fildes of language and literature, towards the understanding of secular lines of study and towards establishing moral standards to stabilise society.

Jainism is essentially an Indian religion and has an all-India character. Its extension beyond the borders of India is negligible. Its antiquities, its sacred monuments and its followers are found almost in every part of India. The Jaina teachers and authors have carried on their instructional and literary activities wherever they went or settled down. Thus their contributions are found in Old Indo-Aryan, Middle Indo-Aryan and New Indo-Aryan as well as in Dravidian languages like Tamil and Kannada. They did not thrive in vacuum or in isolation. The Jaina studies, therefore, are an inseparable part of Indian studies. For a number of reasons, Jainological studies have lagged behind, and hence special attention is needed to ensure their progress in order to gain a comprehensive understanding of the entire cultural heritage of India.

Prior to the advent of European scholars in the field, very few Indian Panditas extended their studies beyond the

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

works of their religion or sectarian fold; and, if at all works of other schools were studied by them, it was only with a view to criticising or finding fault with them. The reasons of study were religious, sentimental and propagandistic, and methods, mostly traditional and steriotyped. In some cases, the object of study was to get some hints in the practice of religion. Religious instincts and sentiments had always had an upper-hand over intellect and rationalism. Even the scope of their studies was generally limited to a sect, religion or language.

The European scholars, who inherited the results of research in Iliad and Odyssey and the Bible, brought these methods to bear upon Indian works in different languages. They edited them critically, scrutinised their contents and examined their claims to age, authenticity and homogeneousness. The value of these works is judged as an expression of human mind. Such an approach is known as scientific or critical. Its validity is self-evident. The facts that have come in one's observation are objectively stated and then subjected to criticism and comparision. A keen attempt is then made to detect and trace the gradual development of thought and language. Finally, the chronological relation of events is determined. In certain respects this approach is also historical and comparative.

Such a spirit of investigation cannot be easily found among those who are trained in sectarian moulds and monastic schools. Every method of study inherits the limitations of individual disabilities of understanding and of proper exposition; but these should get elimnated in the progress of rese-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

arch which aims at reaching a correct or true picture of the situation. In this process of study, a number of scholarly virtues are needed : Studious habits of collecting and correlating facts, fidality to the sources, proper training for weighing evidence, full acaquaintance with earlier researches, sympathetic understanding of the views of others, willingness to correct oneself, and lastly, merging one's individuality in building up the personality of progressive knowledge.

It is in this manner that Jainological research has to be pursued. There are many topics connected with it which can be fruitfully studied.

1) Very little work is done in compiling Bibliographies and Source Books for special fields.

2) Historical survey of Jainism in different parts of India is still a desideratum in all its details. Archaeological and epigraphical data have to de linked up with literary evidence in different areas irrespective of the fact whether any Jainas live there or not at present.

3) Though most of the works of the Ardhamāgadhī canon and the relics of the Pūrvas dealing with Karma doctrine are published, investigation is still to be carried on into their homogeniousity and disparity or otherwise of different layers. The relation of the Prakaraṇas and the canonical strata is equally interesting.

4) The legends of Rāma and Krishṇa are handled by Jaina authors as well, but they show differences in details, the reasons for which have to be investigated in view of the sectarian and religious back-grounds. In this regard one fact

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

has to be borne in mind, namely, a good deal of epic material always floated in oral tradition and this has to be located and correlated with literary sources.

5) The Jaina teachers are great story-tellers and ethical preachers. The motifs employed by them and the illustrations given by them are of great interest for comparative study.

6) The contributions of Jaina authors should pertain to their religion is natural; but it is to be said to their credit that they have made rich contributions to the fields of knowledge even outside their religion. The latter have to be studied in relation to the allied branches of Indian literature.

7) Further, their contributions are found in Sanskrit, Prākrit, Apabhraṁśa and post-Apabhraṁśa predecessors of Rājasthānī, Gujarātī, Hindī etc., as well as in Tamil and Kannaḍa. During recent years, much work has been done in Sanskrit literature and also in some individual languages; but a comparative study of Caritas, Prabandhas, Purāṇas etc. in different languages would yield good results. Through these works we can see a better picture of the growth of Indian languages and literatures as a whole.

8) In some cases older texts are still to be published and a few others need critical editing. Studies in Apabhraṁśa would contribute to a better understanding of our New Indo-Aryan languages.

9) Likewise, the Nyāya literature which was handled by such luminaries like Samantabhadra, Akalaṅka and Vidyānanda in the South and by Haribhadra and others in Rajasthan and Gujarat requires more thorough study. Their

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

academic personalities are still to be portrayed stripping them of the legends in which they are shrouded in later times. Their works reflect a good deal of contemporary thought-current in Indian Nyāya works.

10) One author, namely, Siddhasena, though appreciated as a poet and a philosopher, both in the South and Western India, is not fully studied. To do sufficient justice to him needs great equipment in Indian philosophical thought. A band of specialists can devote their attention to his Stutis which show his deep acquaintance with various Darśanas.

11) There are certain preeminent Jaina concepts like the Ahiṁsā, Anekānta, Aparigraha and Sallekhanā. Their theory and practice can be studied with fruitful results, These ideas have not merely remained in religious books but outstanding men and women of Indian society have put them into practice in different ages. What is needed is their sympathetic and correct understanding in their religious and social perspective.

12) The Jaina teachers have alwoys preferred to preach to the people in their own languages with the result that the languages used by them, namely, Sanskrit, Prākrit, Apabhraṁśa, Kannaḍ, Tamil etc. contain rich linguistic material and cross-language influence rarely found elsewhere. It is only scholars who are equipped with the study of the languages of the South as well as of the North can do justice to their subject.

The field of Jainological studies is still a vergin soil. A trained researcher can reap rich harvest here and can positively contribute to the progress of Indological learning.

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान*

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में जैन कवियों की प्रतिनिधि काव्य-कृतियों का परिशीलन किया गया है। यह सात परिवर्तों में विभक्त है :

अन्तर्दर्शन (इण्ट्रोडक्टरी) प्रथम परिवर्त्त है। इस में जैन कवियों द्वारा निर्मित काव्य विधाओं पर संक्षेप में विचार किया गया है। इस परिवर्त्त में जैन काव्यों की रसनिष्पत्ति-सम्बन्धी प्रक्रिया की भिन्नता पर भी प्रकाश डाला गया है। आत्मा का अमरत्व एवं जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों की अपरिहार्यता दिखलाने के हेतु पूर्व जन्मों के आख्यानों का नियोजन एवं तत्सम्बन्धी कार्य-कारण का विवेचन किया गया है। जैन काव्यों में निम्नलिखित मौलिक अन्तर उपलब्ध होते हैं :

१. बलदेव और वासुदेव (नारायण) जैन काव्यों में पद हैं, इन पदों को अलंकृत करने वाले नौ-नौ व्यक्ति होते हैं। इन का चरित्र पूर्वभवावलि की अपेक्षा भिन्न रहता है, पर वर्तमान भव में प्रायः समान होता है। अतएव जैन कवियों ने इस साम्प्रदायिक मान्यता का निर्वाह करते हुए भी जीवन घटनाओं को इस क्रम से नियोजित किया है, जिस से काव्य-चमत्कार तो सुरक्षित रहा ही है, पुनरावृत्ति भी नहीं हो पायी है। चरित्र विश्लेषण या चरित्रांकन में बुद्धिवाद को प्रमुखता दी गयी है। असम्भव और अविश्वसनीय बातों को चरित्र में स्थान नहीं दिया है।

२. जीव के विकारी भावों का नाम ही कामदेव नहीं है, बल्कि अप्रतिम सौन्दर्य युक्त व्यक्ति कामदेव कहलाता है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या २४ है। संस्कृत जैन काव्यों में बाहुबलि, प्रद्युम्न, नागकुमार, हनुमान् और जीवन्धर का

* मगधविश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित कामदेव के रूप में वर्णित हैं। तीर्थंकर और नारायण के चरितों की अपेक्षा इन का चरित भिन्न रूप में अंकित रहता है।

३. ऋषि-मुनियों का स्वरूप एवं उन की चर्या-साधना अन्य श्रेय काव्यों की अपेक्षा नितान्त भिन्न रूप में वर्णित है। वे अभिशाप या वरदान नहीं देते, अपितु जन्म-जन्मान्तर के आख्यानों के प्रवचन द्वारा पूर्वजन्म कृत कर्मों पर प्रकाश डाल कर नायक या अन्य पात्रों को सावधान कर देते हैं। वर्तमान जीवन के सुख-दुःख का कार्य-कारण भाव विगत जन्मों के शुभाशुभकृत कर्मों के साथ दिख-लाया गया है।

४. धार्मिक एवं जैन इतिवृत्त सम्बन्धी उपमान प्रयुक्त हैं, जिन से जैन दर्शन और आचार मूलक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

५. सन्तान न होने पर नायक का चिन्तित होना अनेकान्तात्मक दृष्टि से समीचीन है। इस से यह सिद्ध है कि मुनिधर्म की स्थिति गृहिधर्म के विना सम्भव नहीं है। अतएव नायक अपने पुरुषार्थ की पूर्णता के लिए सन्तति प्राप्ति के हेतु अनेक प्रकार की साधनाएँ करता है। श्रुतज्ञानी या अवधिज्ञानी मुनिराज से अपने भविष्य फल को सुन कर सन्तोष लाभ करता है।

६. जैन काव्यों के अधिकांश नायक बहु-पत्नी युक्त हैं।

७. नायकों के जीवन वृत्त द्वारा कर्मसिद्धान्त की गुत्थियों का उद्घाटन किया गया है। यतः रस का उद्बोध होने से श्रोता या पाठक की चित्तवृत्तियाँ राजस् और तामस् भावों से उत्क्रान्त हो कर सात्त्विक भावमयी हो जाती हैं। पाठक रसानुभव की स्थिति में पहुँच अपनी स्वार्थमयी वृत्तियों की चरितार्थता भूल जाता है। आनन्ददायिनी या मंगलकारिणी रस-स्थिति कृतकर्म की शृंखला में घटित होती है, क्योंकि कर्मशृंखला के विश्लेषण का प्रधान उद्देश्य जीवन में नैतिकता या सात्त्विक भावों का निर्माण करना है। जीवन शोधन के लिए आस्तिकता के साथ आचार का परिष्कृत होना परम आवश्यक है। जैन काव्यों में यह स्थिति सम्यक् रूप से वर्णित है।

८. आत्मा की दृढ़ आस्था उत्पन्न करने के लिए भूत-चैतन्यवाद और तत्त्वोपप्लववाद, न्याय-वैशेषिक एवं सांख्य सिद्धान्तों की समीक्षा उपस्थित की गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्यों में आये हुए दार्शनिक सिद्धान्तों ने काव्य-सौन्दर्य को विकृत नहीं होने दिया है।

९. शृंगार, सौन्दर्य, प्रकृति एवं मानव स्वभाव का सम्यक् उद्घाटन करते हुए कवियों ने नायक को अन्तिम जीवन में विरक्त दिखला कर राग-विराग का अपूर्व समन्वय उपस्थित किया है।

द्वितीय परिवर्त्त में दशमी शती तक के चरितनामान्त महाकाव्यों का परिशीलन प्रस्तुत किया गया है। इस युग की प्रतिनिधि रचनाएँ चन्द्रप्रभचरित, प्रद्युम्नचरित और वर्द्धमानचरित हैं। इन तीनों काव्यों के रचयिताओं के स्थितिकाल, जीवन परिचय एवं रचनाओं का निर्देश किया गया है। काव्यों की कथावस्तु, कथानक स्रोत, कथागठन, महाकाव्यत्व, वस्तु व्यापारों का विश्लेषण, चरित्रचित्रण, सौन्दर्य-निरूपण, रसभाव-अलंकार-छन्दो-योजना, भाषाशैली, काव्यचमत्कार एवं पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव का विश्लेषण किया है। इस परिवर्त्त में कवियों के कालनिर्णय के साथ काव्यस्थापत्य विश्लेषण में अनेक नयी उद्भावनाएँ की गयी हैं।

तृतीय परिवर्त्त में ग्यारहवीं शती से चौदहवीं शती तक के चरितनामान्त महाकाव्यों का परिशीलन उपस्थित किया गया है। इस परिवर्त्त में उक्त युग की तीन प्रतिनिधि रचनाओं पार्श्वनाथचरित (वादिराज), वरांगचरित (वर्धमान) एवं शान्तिनाथचरित (मुनिभद्र) का आलोचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन समाहित हैं। सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ और तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवनवृत्त को ग्रहण कर कई कवियों ने संस्कृत भाषा में काव्यों का प्रणयन किया है। पर मुनिभद्र और वादिराज की काव्य रचना काव्यगुणों की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं, अतएव परिशीलन प्रस्तुत करने में प्रतिनिधिरूप उक्त दोनों काव्यों को ही ग्रहण किया गया है। महाकवि वर्धमान का वरांगचरित काव्यगुणों की दृष्टि से जटासिंह नन्दी के वरांगचरित की अपेक्षा उत्तम है। अनावश्यक वर्णन एवं सिद्धान्तप्रतिपादन इस काव्य में भले कम हों, पर रस भावादि का विश्लेषण पर्याप्त मात्रा में हैं। अतएव इस तृतीय परिवर्त्त में विवेचित काव्य संस्कृत काव्यकोष के लिए अमूल्य मणियाँ हैं।

चतुर्थ परिवर्त में 'इतरनामान्त संस्कृत जैन महाकाव्यों का परिशीलन प्रस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया गया है। धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाण, जयन्तविजय, पद्मानन्द और नर-नारायणानन्द ऐसे महाकाव्य हैं, जो रघुवंश, बुद्धचरित, सौंदरनन्द, किरात, माघ एवं नैषध की श्रेणी में सम्मिलित किये जा सकते हैं। धर्मशर्माभ्युदय का प्रभाव नैषध पर लक्षित होता है। जैन कवियों ने इस श्रेणी के लगभग बीस-पचीस काव्य लिखे हैं, पर उन में से प्रतिनिधि रूप उक्त पाँच महाकाव्यों का ही परि-शीलन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम परिवर्त्त में सन्धानात्मक महाकाव्यों के प्रतिनिधि द्विसन्धान और सप्त-सन्धान काव्यों का अध्ययन उपस्थित किया गया है। संस्कृत के उपलब्ध सन्धान काव्यों में उत्तम और प्राचीन धनंजय का द्विसन्धान काव्य है। इस से प्राचीन कोई भी सन्धान काव्य उपलब्ध नहीं है। हाँ, दण्डी के सन्धान काव्य का निर्देश अवश्य मिलता है, पर वह कृति आज उपलब्ध नहीं है। अतः समस्यापूर्त्यात्मक और सन्धानात्मक काव्य विधाओं के क्षेत्र में जैन कवियों के कार्य प्रशंसनीय हैं। इन दोनों विधाओं का संवर्द्धन संस्कृत भाषा के जैन कवियों ने किया है। ऐति-हासिक संस्कृत जैनकाव्यों में बालचन्द्र का वसन्तविलास, सर्वानन्द का जगडूचरित, अरिसिंह का सुकृतसंकीर्त्तन एवं नयचन्द्र का हम्मीरकाव्य उल्लेख्य हैं। इन में से हम्मीरकाव्य का ही अध्ययन उपस्थित किया गया है। अभिलेखकाव्यों में शताधिक संस्कृत के अभिलेख प्राप्य हैं। इन में से अधिकांश अभिलेख ऐतिहासिक और काव्यमूल्यों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत परिवर्त में ऐहोल, भन्ने, कोन्नूर और मल्लिषेण प्रशस्ति आदि का ही परिशीलन प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ परिवर्त्त में संस्कृत के जैन कथाकाव्य, लघुकाव्य, सन्देशकाव्य, सूक्ति-काव्य एवं स्तोत्रकाव्यों का परिशीलन किया गया है। जैनकवियों ने क्षत्रचूडामणि, शत्रुंजय, सुदर्शनचरित जैसे कथाकाव्य, पार्श्वाभ्युदय, यशोधरचरित, जैनकुमार-सम्भव और महीपालचरित जैसे कलात्मक लघुकाव्य, नेमिदूत, पवनदूत, शीलदूत, जैनमेघदूत, मयूरदूत प्रभृति दूतकाव्य, सूक्तिमुक्तावली, सुभाषितरत्नसन्दोह, वैराग्यशतक प्रभृति सूक्तिकाव्य एवं भक्तामर, एकीभाव, विषापहार, कल्याण-मन्दिर, जिनचतुर्विंशति और सरस्वती इत्यादि स्तोत्र काव्यों का प्रणयन कर संस्कृत के काव्यभाण्डार को समृद्ध बनाया है। प्रस्तुत परिवर्त्त में उक्त प्रकार की प्रतिनिधि रचनाओं का अध्ययन किया गया है। जिन्हें हम ने लघुकाव्य की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संज्ञा दी है, वे खण्डकाव्य नहीं हैं, यतः उन की कथावस्तु जीवनव्यापी है, पर वस्तुव्यापार वर्णन और प्रकृति चित्रण आदि में कवियों ने उतना रस नहीं लिया है। सर्ग भी आठ से कम ही हैं।

सप्तम परिवर्त्त में 'संस्कृत जैनकाव्यों का आभ्यन्तरिक विश्लेषण' किया गया है। काव्य की पृष्ठभूमि के विवेचन के साथ कामतत्त्व, सौन्दर्यतत्त्व और प्रेमतत्त्व का विश्लेषण किया है। काव्यों में आये हुए ज्योतिष एवं शकुन, राजनीति, धर्म-दर्शन, शिक्षा-संस्कृति एवं विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। इस परिवर्त्त में संस्कृत जैन काव्यों के आलोक में मानवीय योग्यताओं के उत्कर्ष, विभिन्न संवेदनाएँ एवं पाप-पुण्य के प्रपंच, जीवनमार्ग और शाश्वत सुख का निर्देश किया गया है। उपसंहार में जैन कवियों की उपलब्धियों का निर्देश किया गया है।

भविसयत्त कहा तथा अपभ्रंश कथा काव्य*

डॉ॰ देवेन्द्रकुमार शास्त्री

यह शोध प्रवन्ध तीन खण्डों में निवद्ध है। प्रत्येक खण्ड में दो-दो अध्याय हैं। पहले खण्ड में अपभ्रंश भाषा और साहित्य का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में वैदिक, अवेस्ता और प्राकृतों से अपभ्रंश भाषा का सम्बन्ध तथा उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य का वर्गीकरण कर कथाकाव्य की विधा का निर्देश किया गया हैं। इस में इस बात का भी विशेष विचार किया गया है कि क्या अपभ्रंश आभीरों की भाषा है? मेरा स्पष्ट मत है कि अपभ्रंश किसी जाति-विशेष की भाषा नहीं रही है। साहित्य के वर्गीकरण में चरितकाव्य और कथाकाव्य का स्पष्ट अन्तर दिखलाते हुए उन की स्वतन्त्र काव्य-विधाओं का विवेचन किया गया है। ये दोनों ही बातें आज तक की प्रकाशित किसी भी पुस्तक में नहीं मिलतीं।

दूसरे खण्ड में भविसयत्तकहा और अपभ्रंश के कथाकाव्यों की समीक्षा आधुनिक विधि से की गयी है। सम्पूर्ण अनुशीलन अधिकतर हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। विवेचित कथाकाव्यों में से सम्प्रति विलासवईकहा

---

* आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच॰ डी॰ उपाधि के लिए स्वीकृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(साधारण सिद्धसेन), भविसयत्तकहा (विबुध श्रीधर), जिनदत्तकथा (लाखू), सिद्धचक्र या श्रीपालकथा (पं० रइधू), सिद्धचक्रकथा (पं० नरसेन) और सत्तवसण कहा (माणिक्कचन्द) अप्रकाशित हीं हैं। इन में से विशिष्ट अध्ययन भविसयत्तकहा (धनपाल), भविसयत्तकहा (विबुध श्रीधर), विलासवईकहा (सिद्धसेन), जिनदत्तकथा (लाखू) और सिद्धचक्रकथा (पं० रइधू) का अन्य कथाकाव्यों के सन्दर्भ में किया गया है। हिन्दी के प्रबन्धकाव्यों की समालोचना की दृष्टि से इन का संक्षिप्त एवं महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन किया गया है। कथाकाव्यके प्रायः प्रत्येक अंग का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

तीसरे खण्ड में अपभ्रंश–कथाकाव्य की सामान्य प्रवृत्तियों तथा लोकतत्त्व का विचार किया गया है। लोक-तत्त्व में लोक-कथाओं के रूप, कथा-मानक रूप, कथाभिप्राय और लोक-जीवन तथा संस्कृति का अनुशीलन किया गया है। यह अनुशीलन इस लिए किया गया है कि अपभ्रंश-कथाकाव्यों की वस्तु या तो निजंधरी है या लोक-जीवन से उद्धृत। इन लोककथाओं में लोक-साहित्य के लगभग सभी प्रमुख तत्त्व मिलते हैं। इस प्रकार का अपभ्रंश-साहित्य का अध्ययन आज तक किसी भी विद्वान् ने नहीं किया।

प्रबन्ध को लिखते समय ऐतिहासिक दृष्टिकोण सम्मुख रहा है। लोक-साहित्य विषयक कथा-रूपों तथा अभिप्रायों का विचार ऐतिहासिक पद्धति पर किया गया है।—साहित्यिक दृष्टि से संस्कृत-प्राकृत और अपभ्रंश की काव्य-धारा में साहित्यिक विधा का विकास और परम्परा एवं प्रभाव का भी मूल्यांकन किया गया है। परिशिष्ट में अपभ्रंश के कथाकाव्यों का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव दर्शाया गया है। विषय-विवेचन में संक्षिप्तता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। क्योंकि विषय की व्यापकता से यदि ऐसा न कर सकता तो कम से कम प्रबन्ध का आकार तिगुना अवश्य हो जाता। यद्यपि अपभ्रंश-साहित्य पर डॉ० हरिवंश कोछड़, डॉ० रामसिंह तोमर, डॉ० नामवर सिंह और डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर के प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु अभी तक कई रचनाएँ सम्यक् प्रकाश में नहीं आ सकी हैं। अधिकांश काव्यों का परिचय मात्र मिलता है। अतएव कई अप्रकाशित तथा कठिनाई से प्राप्य रचनाओं का अनुशीलन कर विषय और विवेचन की दृष्टि से यह प्रथम मौलिक प्रयास है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि रइधू और उन का साहित्य[1]

डॉ० राजाराम जैन

अपभ्रंश-साहित्य में महाकवि रइधू का स्थान कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। अन्तर्वाह्य साक्ष्यों के आधार पर उन का काल वि० सं० १४४०-१५३० सिद्ध होता है। इस अवधि में उन्होंने लगभग तीस ग्रन्थ रचे। उन में से उपलब्ध इक्कीस ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

[क] चरित-साहित्य [तीर्थंकर सम्बन्धी]—१. संतिणाहचरिउ* (मात्र आठ सन्धियाँ उपलब्ध हैं)। २. णेमिणाहचरिउ (१४ स० ३०२ क०)। ३. पासणाहचरिउ* (७ स० १३७ क०) ४. सम्मइजिणचरिउ (१० स० २४६ क०)।

[ख] चरित-साहित्य [तीर्थंकरेतर]—५. मेहेसरचरिउ (१३ स० ३०४ क०)। ६. बलहद्दचरिउ (११ स० २४० क०)। ७. जिमंधरचरिउ (१३ स० ३०१ क०)। ८. सिरिवालचरिउ (१० स० २०२ क०) ९. जसहरचरिउ* (४ स० १०४ क०)। १०. सुकोसलचरिउ (४ स० ७४ क०)। ११. घण्णकुमारचरिउ (४ स० ७४ क०)

[ग] आचार एवं सिद्धान्त-साहित्य—१२. पुण्णासवकहा (१३ सं० २५० क०)। १३. सावयचरिउ (६ स० १२५ क०)। १४. सम्मत्तगुण-णिहाणकव्व (४ स० १०४ क०)। १५. अप्पसंबोहकव्व (३ स० ५८ क०)। १६. अणथमिउकहा (मात्र १९ पद्य)। १७. सिद्धंतत्थसार (प्राकृत १३ अंक १९३३ गाथाएँ)। १८. वित्तसार (प्राकृत, ६ अंक ८५० गाथाएँ)।

[घ] अध्यात्म एवं अन्य साहित्य—१९. बाराभावना (हिन्दी ३७ पद्य)। २०. सोलहकारण जयमाला (अप० २७ पद्य)। २१. दहलक्खण जयमाला (अप० ११ पद्य)।

कवि के महापुराण, सुदंसणचरिउ, पज्जुण्णचरिउ, भविसयत्तचरिउ, करकंड-चरिउ प्रभृति ग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध हैं।

---

१. बिहार विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत।
* चिह्नित ग्रन्थ सचित्र हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रइधू-साहित्य की सर्वप्रथम विशेषता है उस की विस्तृत प्रशस्तियाँ। कवि ने अपने प्रायः सभी ग्रन्थों के आदि एवं अन्त में प्रशस्तियों का अंकन किया है जिन के माध्यम से कवि ने समकालीन साहित्यिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर सुन्दर प्रकाश डाला है। इन प्रशस्तियों से विदित होता है कि तोमरवंशी राजा डूंगरसिंह एवं कीर्तिसिंह तथा चौहान-वंशी राजा रुद्रप्रताप उन के परम भक्त एवं जैनधर्म एवं साहित्य के परम उपासक थे। कवि की प्रेरणा से ही राजा डूंगरसिंह एवं उन के पुत्र राजा कीर्तिसिंह ने राज्य की कोटि-कोटि मुद्राएँ व्यय कर के तैंतीस वर्षों तक लगातार अगणित जैन-मूर्तियों का निर्माण गोपाचल-दुर्ग में कराया था। उन में से कई मूर्तियाँ बड़ी विशाल हैं। एक मूर्ति तो ५७ फ़ीट ऊँची है। संख्या, विशालता एवं कला-वैभव की दृष्टि से ये अनुपम हैं।

इसी प्रकार चन्द्रवाडपट्टन (आधुनिक चन्दुवार—फ़ीरोज़ाबाद) के नगरसेठ कुन्थुदास ने भी कवि की प्रेरणा से हीरे, मोती एवं माणिक्यों की कई जैन-मूर्तियों का निर्माण कराया। उपलब्ध भारतीय इतिहास में जैन मूर्तिकला की उक्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं के उल्लेख नहीं मिलते। ऐसा क्यों हुआ, यह कारण अज्ञात है। किन्तु अब उन का उचित मूल्यांकन होना आवश्यक है।

प्रशस्तियों की दूसरी विशेषता यह है कि उन में काष्ठासंघ, माथुरगच्छ की पुष्करगण शाखा के भट्टारकों की एक क्रमबद्ध परम्परा प्राप्त है। कवि ने देवसेन विमलसेन, धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्त्ति, श्रीपाल, व्रह्म, खेमचन्द्र, मलयकीर्ति, गुणभद्र, विजयसेन क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कमलकीर्ति, शुभचन्द्र एवं कुमारसेन के उल्लेख यथाक्रम किये हैं। यद्यपि ये उल्लेख संक्षिप्त एवं प्रसंग प्राप्त हैं किन्तु उन के क्रम एवं समय-निर्धारण तथा उन के साधनापूर्ण कार्यों को समझने के लिए वे महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ-सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

रइधू ने पूर्ववर्त्ती अपभ्रंश कवियों में चउमुह, द्रोण, ईशान, स्वयम्भू, पुष्प-दन्त, धनपाल, वीर, धवल, धीरसेन, पविषेण, सुरसेन एवं दिनकरसेन एवं संस्कृत कवियों में देवनन्दि, जिनसेन (प्रथम एवं द्वितीय) एवं रविषेण के उल्लेख किये हैं। अपभ्रंश के अनुसन्धित्सुओं के लिए धीरसेन, पविषेण, सुरसेन, एवं दिनकरसेन इन चार कवियों के नाम नवीन हैं। रइधू ने उन की क्रमशः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण, नयप्रमाण, मेहेसरचरिउ एवं अणंगचरिउ नाम की कृतियों के उल्लेख किये हैं। इन ग्रन्थों के अन्वेषण एवं प्रकाशन से जैनदर्शन एवं साहित्य की दिशा में नये प्रकाश की सम्भावना है।

रइधू ने आश्रयदाताओं की ११-११ पीढ़ियों तक की कुल परम्पराएँ एवं उन के द्वारा किये गये साहित्य, धर्म, तीर्थ, मूर्ति-निर्माण, मन्दिर-निर्माण, दान एवं राज्य सेवा सम्बन्धी कार्यों पर प्रकाश डाला है। इन सन्दर्भों के आधार पर मालवा के मध्यकालीन जैन समाज के सांस्कृतिक इतिहास का प्रामाणिक लेखा-जोखा तैयार हो सकता है।

रइधू कृत प्रबन्धात्मक आख्यानों का गम्भीर अध्ययन करने से उन की निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—

१. पौराणिक पात्रों पर युग प्रभाव।
२. प्रबन्धों की अन्तरात्मा में पौराणिकता का पूर्ण समावेश रहने पर भी कवि द्वारा प्रबन्धों का स्वेच्छया पुनर्गठन।
३. चरित-वैविध्य।
४. पौराणिक-प्रबन्धों में काव्यत्व का संयोजन।
५. प्रबन्धावयों का सन्तुलन।
६. मर्मस्थलों का संयोजन।
७. उद्देश्य की दृष्टि से सभी प्रबन्ध-काव्यों का सादृश्य, किन्तु जीवन की आद्यन्त अन्विति का पृथकत्व-निरूपण।

प्रबन्ध-आख्यानों के अतिरिक्त कवि ने 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व', 'वित्तसार', 'सिद्धान्तार्थसार' जैसे सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया है। यद्यपि उक्त ग्रन्थों में निरूपित विषय कुन्दकुन्द प्रभृति पूर्वाचार्यों से ही परम्परा-प्राप्त हैं। इसी कारण उन में मौलिकता भले ही न हो, तो भी 'नद्या नवघटे जलम्' वाली उक्ति के अनुसार विषय के प्रस्तुतीकरण में अवश्य ही निम्न प्रकार के वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होते हैं—

१. सिद्धान्त-प्रस्फोटन के लिए आख्यान का प्रस्तुतीकरण।
२. बहुमुखी प्रतिभा द्वारा सिद्धान्तों का सरल रूप में प्रस्तुतीकरण।
३. विषयों का क्रम-नियोजन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. दार्शनिक विषयों का काव्य के परिवेश में प्रस्तुतीकरण।

५. आचार के क्षेत्र में मौलिकता का प्रवेश।

महाकवि रइधू ने अपने समस्त वाङ्मय में चार भाषाओं का प्रयोग किया है—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी। संस्कृत में कवि ने कोई स्वतन्त्र रचना नहीं की। किन्तु ग्रन्थों की सन्धियों के आदि अथवा अन्त में आदि मंगल या आशीर्वादात्मक विचार संस्कृत के आर्या, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, शिखरिणी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित जैसे विविध श्लोकों के माध्यम से व्यक्त किये हैं। उपलब्ध ग्रन्थों में ऐसे श्लोकों की संख्या १२० के लगभग है। श्लोकों की संस्कृत-भाषा पाणिनि-सम्मत ही है किन्तु कहीं-कहीं उस पर प्राकृत-अपभ्रंश का प्रभाव भी दृष्टगोचर होता है!

रइधू की प्राकृत रचनाओं में दि० जैनागमों में व्यवहृत शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग मिलता है। उस में क्वचित् कदाचित् अर्धमागधी एवं महाराष्ट्री के शब्द-प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं। प्राकृत-भाषा-निबद्ध कवि की दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—सिद्धन्तत्थसार एवं वित्तसार।

रइधू-साहित्य में एक रचना हिन्दी में भी उपलब्ध है। यद्यपि वह अत्यन्त लघुकृति है जिस में मात्र ३९ पद्य हैं किन्तु भाषा, विधा एवं छन्दरूपों की दृष्टि से वह महत्त्वपूर्ण कृति है। उस रचना का नाम है—'बाराभावना'। इस में दोहा चौपाई मिश्रित गीता-छन्द में द्वादशानुप्रेक्षाओं का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। इस रचना की हिन्दी अपभ्रंश से प्रभावित है और उस के 'केरउ', 'केरी', जैसे परसर्गों के प्रयोग उपलब्ध हैं। उस में राजस्थानी, ब्रज, बुन्देली एवं बघेली शब्दों के प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। वस्तुतः कवि की इस लघुकृति में प्राचीन हिन्दी के विकास की एक निश्चित-परम्परा वर्तमान है।

महाकवि रइधू मूलतया अपभ्रंश के कवि हैं। अतः उक्त तीन कृतियाँ छोड़ कर अवशिष्ट सभी कृतियाँ अपभ्रंश भाषा निबद्ध हैं। उन की अपभ्रंश परिनिष्ठित अपभ्रंश है, पर उस में कहीं-कहीं ऐसी शब्दावलियाँ भी प्रयुक्त हैं जो आधुनिक भारतीय भाषाओं की शब्दावलियों से समकक्षता रखती है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द यहाँ प्रस्तुत हैं—

टोपी, मुग्गदालि (मूंग की दाल), लइगउ (ले गया), साली (पत्नी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की वहन), पटवारि (पटवारी), वक्कल (बुन्देली वकला = छिलका), ढोरु (ढोर), जंगल, पोटलु (पोटली), खट्ट (खाट), गालो, झड़प्प (झड़प), खोज्ज (खोज), लक्कडो (लकड़ी), पोट्टि (पोट कर), ढिल्ल (ढीला) आदि।

संस्कृति की दृष्टि से भी रइधू साहित्य मध्यकालीन परिस्थितियों का एक प्रतिनिधि-साहित्य है। उस में राजतन्त्र एवं शासन-व्यवस्था, सामाजिक-जीवन, परिवार गठन एवं परिवार के घटक, वाणिज्य-प्रकार, आयात-निर्यात की सामग्रियाँ, समुद्र यात्राएँ, आचार-व्यवहार, मनोरंजन, शिक्षापद्धति प्रभृति विषयों पर बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है।

बहुमुखी प्रतिमा के धनी महाकवि रइधू निस्सन्देह ही भारतीय वाङ्मय के इतिहास के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। विपुल एवं विविध साहित्य रचनाओं की दृष्टि से उन की तुलना में ठहरने वाले किसी अन्य प्रतिस्पर्द्धी कवि या साहित्यकार के अस्तित्व की सम्भावना नहीं की जा सकती। रस की अमृत स्रोतस्विनी प्रवाहित करने के साथ जैन संस्कृति के चिरन्तन आदर्शों की प्रतिष्ठा करने वाला यह प्रथम सारस्वत है जिस के व्यक्तित्व में एक साथ इतिहासकार, प्रबन्धकार, दार्शनिक, आचारशास्त्र प्रणेता एवं क्रान्तद्रष्टा का समन्वय हुआ है।

कवि की उपलब्ध समस्त रचनाओं का परिशीलन बिहार सरकार के शिक्षा विभाग की ओर से 'अपभ्रंश के महाकवि रइधू की रचनाओं का आलोचनात्मक परिशीलन' नामक शोध ग्रन्थ के रूप में शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है तथा जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर की ओर से 'रइधू ग्रन्थावली' के रूप में समग्र रइधू-साहित्य १५ भागों में प्रकाशित होने जा रहा है। उस का प्रथम भाग यन्त्रस्थ है एवं द्वितीय भाग का सम्पादन-कार्य एवं अनुवाद लगभग तैयार है।

JAINA THEORY OF RELIGION AND ETHICS*

Dr. B. B. Rayanade

In this work an attempt is made to evaluate the Philosophical doctrines of Jainism, not intheir insolation but in comparison with other systems of thought–both Indian and Western.

* हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

It examines critically bringing out parallel thoughts. It is not a mere exposition of Jaina classics but a criticism, construction and interpretation. The discussions are not directed to the cosmological problems, but ethical, metaphysical and religious, approached from the side of Ethico-religion. The work may also be viewed as a reorientation of Jaina Philosophy. It places Jaina Philosophy in the line with ethico-religious Philosophies of the west. It brings out the full significance of the approach of ethico-religious doctrines; the chief import of Jaina Philosophy is—religion crowns morality; this aspect chosen by Jainism is a sure method to delve deep into the problem of summum bonum.

Objections to the comparative studies do not prove that comparison is necessarily misleading. Comparison should be between system and system and not only between concept and concept. Even comparison between concept and concept, if it is to be thorough, should lead to the comparison of systems—which means that the concepts are taken with all the significance they derive from the peculiar contexts. Only such comparison can have metaphysical value.

This progressive thought will certainly not be merely a colligation of similarities. Nor can all similarities be valuable. The progressive thought would therefore be an ever renewing systematization which includes all presented facts and transcends them. Every systematisation adds to the facts systematised a new quality which the facts by themselves do not possess.

Though I am aware of the implications of comparative study, I have not been quite competent to fulfil the expectation. It is the first attempt in the direction of Jaina study,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश कथाकाव्यों का हिन्दी-प्रेमाख्यानकों के शिल्प पर प्रभाव*

श्री प्रेमचन्द्र जैन

इस प्रवन्ध के विषय को सात अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है।

(१) हिन्दी प्रेमाख्यानक अपनी सम्पूर्ण आत्मा और कलेवरगत विशिष्टताओं के कारण हमारे साहित्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इस काव्यरूप के भीतर प्राचीन और नवीन अनेक प्रकार के तत्त्वों का मिश्रण हुआ है। यह मिश्रण इस काव्य-रूप को पुराने काव्यरूपों के जोड़-तोड़ से बना एक अलग काव्यरूप नहीं बनाता वल्कि इस मिश्रण की रासायनिक प्रक्रिया ने हिन्दी प्रेमाख्यानक के रूप में एक ऐसी विधा (फ़ार्म) को जन्म दिया जो किंचित् पुराने उपादानों को स्वीकार करते हुए भी नयी लोकात्मक भाव-भूमियों का स्पर्श करने वाली बिलकुल विलक्षण शिल्पभंगिमा वाली वस्तु बन गयी।

यह काव्यरूप हिन्दी में पूर्ण विकास को प्राप्त हुआ; किन्तु इस का बीज-वपन और अंकुरोद्भव अपभ्रंश साहित्य में हो चुका था। ऐसा स्वाभाविक भी है। क्योंकि अपभ्रंश न केवल हिन्दी की जननी भाषा है बल्कि लोकभाषा के रूप में हिन्दी का आगे चल कर जो विकास हुआ, उस की पूर्ववर्ती पीठिका भी यहीं तैयार हुई। अनेकानेक विद्वानों ने अपभ्रंश को जो लोकभाषा कहा है, उस के पीछे यही मन्तव्य छिपा हुआ है। अपभ्रंश, संस्कृत, पालि और प्राकृत की तुलना में यहीं अधिक लोकजीवन सम्पृक्त भाषा रही। परिणामतः न केवल उस के भाषिक कलेवर में बल्कि वस्तुगत आत्मा और शैली-शिल्प आदि के भीतर भी लोकतत्त्वों का प्रचुर समन्वय हुआ। हेमचन्द्राचार्य जब अपभ्रंश के वैयाकरणिक नियमों का आख्यान करते हुए 'लोकतोऽवगन्तव्या' कहते हैं, तो वे प्रकारान्तर से इसी बात की पुष्टि करते हैं।

अपभ्रंश का पूरा कथा-साहित्य, विशेषकर प्रेमाश्रित कथा-साहित्य, इसी लोक-मानस की देन है। हिन्दी में प्रेमाख्यानकों की पृष्ठभूमि के रूप में इस का

---

* हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्ययन प्रेमाख्यानकों के अध्ययन की अनेकानेक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकता है। इस अध्ययन ने निम्न तत्त्वों के आधार पर इस मान्यता की साधार पुष्टि की है।

(२) संस्कृत में कथा आख्यायिका का वृहत् साहित्य उपलब्ध है। कादम्बरी, दशकुमारचरित, बृहद्कथा तथा हर्षचरित आदि को कौन नकार सकता है। इन कथाओं में रोमांस, प्रेम के नाना पक्षों तथा जन्म-जन्मान्तर की अनेक घाटियों में भटकती आत्माओं के मिलन का चटक रंगीन और धूमिल उदास करने वाला वहुविध वर्णन सर्वत्र मिलेगा। संस्कृत के आलंकारिकों ने इन कथा-आख्यायिकाओं को आधार बना कर इन के लक्षण निरूपण का भी वहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु क्या रुद्रट, भामह, मम्मट, विश्वनाथ आदि द्वारा निरूपित लक्षण संस्कृत के कथा-साहित्य में यथावत् मिल जाते हैं ? ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यों-ज्यों कालसरिता बढ़ती गयी और ज्यों-ज्यों उस के प्रवाह में नये-नये तत्त्व और उपादान वहकर आते गये त्यों-त्यों आचार्यों के लक्षण निरूपण भी बदलते गये। अपभ्रंश कथाओं में ऐसे अनेकानेक उपादान दिखाई पड़ते हैं जो संस्कृत कथा-साहित्य में दुर्लभ हैं। इसी लिए इन आचार्यों को कथाकाव्य के लक्षणों के निरूपण में अनेक ऐसी वातों का समावेश करना पड़ा जो संस्कृतेतर लोक-भाषा में गृहीत होने वाले उपादानों को बाँध सकें। हेमचन्द्राचार्य ने तो स्पष्ट ही संस्कृत कथा और संस्कृत भिन्न कथा को विलगाने का प्रयत्न किया। अन्य आचार्यों के लक्षण ग्रन्थों में भी यह विभाजन सांकेतिक ही सही वर्तमान अवश्य है।

(३) अपभ्रंश कथा में गृहीत लक्षण आगे चल कर लोकभाषा हिन्दी के प्रेमाख्यानकों में पूरी तरह विकसित और पल्लवित हुए। दूसरे अध्याय के अध्ययन से इस बात की पुरस्सर पुष्टि हो जाती है। हिन्दी में प्रेमाख्यानक प्रायः ही दो प्रकार के लिखे गये। एक सूफ़ी कवियों की मसनवी पद्धति पर आधारित दूसरा शुद्ध भारतीय पद्धति के। इन दोनों प्रकार के प्रेमाख्यानकों का शैली शिल्प वहुत साम्य रखता है। ऊपर-ऊपर से देखने पर सूफ़ी प्रेमाख्यान दोहे-चौपाई में लिखे गये, उन में छन्द-वैविध्य कम है, लोग उन की रचना के पीछे मसनवी शैली का प्रभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी देखते हैं, पर मंगलाचरण, गुरुवन्दना, कवि वंशपरिचय, प्रेम की विभिन्न अवस्थाएँ, वस्तुचित्रण, नगर, भवन, चित्रशाला, अश्व, रथ तथा दूसरे युद्ध के उपादान, सरोवर, बाग़-बगीचे के वर्णनों के अलावा कथाभिप्रायों की दृष्टि से भी ये कथा-काव्य अपभ्रंश कथाओं का अनुसरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं। शुद्ध हिन्दू प्रेमाख्यानकों में तो यह प्रभाव पर्याप्त स्पष्ट और घनिष्टरूप से परिलक्षित होता ही है।

(४) प्रतीक योजना सूफ़ी काव्यों की एकदम नयी वस्तु मानी जाती है। और उस पर अनेकानेक विद्वानों ने बहुत विस्तार से विचार भी किया है, किन्तु क्या प्रतीक विद्या अभारतीय है ? प्रतीक भारतीय दर्शन, धर्म और शास्त्रों के बहुपरिचित तत्त्व हैं जिन का उपयोग हमारे देश में ऋग्वेद से ले कर आज तक अनेकानेक रूपों में होता रहा है। यह सही है कि दार्शनिक प्रतीकों को काव्य का अनिवार्य उपादान बनाने की कोशिश नहीं की गयी। किन्तु बाणभट्ट की कादम्बरी का अक्षोदसरोवर प्रेमह्लद का प्रतीक नहीं है ? क्या कादम्बरी स्वयं मांसल वासनामूलक प्रेम का और महाश्वेता तपःपूत चिन्मय प्रेमतत्त्व का प्रतीक नहीं है ? डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन' में इस तरह के प्रतीकों पर विस्तृत विचार किया है। संभवतया संस्कृत-साहित्य में प्रतीकात्मकता लाने का सचेष्ट प्रयत्न कम हुआ। पर अपभ्रंश में और भक्ति आन्दोलन से प्रभावित हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का प्रचुर प्रयत्न हुआ है। अपभ्रंश में तो 'मयणपराजयचरिउ' जैसे काव्य नितान्त प्रतीकात्मक हैं। अतः सूफ़ी कथाकाव्यों की प्रतीक पद्धति को भी अपभ्रंश कथाकाव्यों की प्रतीकपद्धति से सीधे जोड़ा जा सकता है।

(५) अपभ्रंश प्रेमाख्यानकों की सीमा में कई तरह के काव्यरूपों में लिखे काव्य समाहित हो जाते हैं। चरित्र, रास, विलास, पुराण आदि वस्तुतः बाह्य कलेवर की विशिष्टताओं को सूचित करने वाले नाम हैं, इन की आत्मा में वे ही शैली शिल्प के तत्त्व घुले-मिले हैं जो अपभ्रंश की प्रेमकथाओं या हिन्दी प्रेमा-ख्यानकों में मिलते हैं। यहीं पर विस्तार से संस्कृत से अपभ्रंश कथाओं को बिलगाने वाले उपादानों का विश्लेषण भी किया गया है ताकि यह स्पष्ट हो सके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि ये तत्त्व संस्कृत कथाओं से कितने अलग और हिन्दी प्रेमाख्यानकों से कितने निकट हैं।

(६) अपभ्रंश और हिन्दी प्रेमाख्यानकों का पूरा वस्तुविवेचन इस दृष्टि से किया गया है कि वह अपने भीतर के सभी शिल्पगत रहस्यों को उद्घाटित कर सके। कथाओं का सारांश इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है ताकि हम उस में से कथाशिल्प के सभी तत्त्व, वर्णन-पद्धतियाँ आदि छाँट सकें।

(७) अन्त में इन सभी उपादानों का सम्यक् अध्ययन कर के यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी के प्रेमाख्यानक वस्तुतः अपभ्रंश कथाकाव्यों में स्वीकृत पद्धति को पूरी तरह स्वीकार कर के चलते हैं। जहाँ कुछ भिन्नता है, वहाँ विकास के कारण आयी है, भिन्नता लाने के लिए नहीं।

इस दृष्टि से इस प्रवन्ध में अपभ्रंश और हिन्दी प्रेमाख्यानकों की पृष्ठभूमि में विद्यमान सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों का साम्य दिखाते हुए इस बात को स्पष्ट किया गया है कि कथाविन्यास (पुरविन्यास से तुलना करते हुए) चरित्र, कथोद्देश्य, वस्तुवर्णन, कथाभिप्राय (मोटिफ), निजंधरी तत्त्व, मंगलाचरण, सर्गनिवन्धन, ऋतुवर्णन, छन्दप्रयोग तथा कथा को भराव देने वाले जीवन के विभिन्न तत्त्व, खेल-क्रीड़ा, मनोरंजन आदि सांस्कृतिक मनबहलाव के साधनों के वर्णन में दोनों के भीतर कितनी समानता है।

इस तरह से यह प्रवन्ध अपभ्रंश और हिन्दी प्रेमाख्यानकों के बीच की शृंखला के नियोजन का कार्य तो करता ही है, दोनों के बीच को समानधर्मा प्रवृत्तियों के उद्घाटन द्वारा हिन्दी की इस महत्त्वपूर्ण काव्यविधा के अध्ययन के कुछ नये क्षितिज भी उद्घाटित करता है।

शैली और शिल्प को व्यापक अर्थ में प्रस्तुत करते हुए वस्तुतः इस प्रबन्ध के द्वारा लोकभाषा के पूर्व और पश्चात् कालावधि के बीच के अन्तराल को दूर करना ही इस प्रवन्ध का मुख्य उद्देश्य रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहार क्षेत्र की मूर्तियों एवं शिलालेखों का आलोचनात्मक अध्ययन*

सुश्री शान्ति जैन

अहार क्षेत्र की मूर्तियों एवं शिलालेखों पर अभी तक अनुसन्धान नहीं हुआ है न ही अभी तक विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। यह इतिहास एवं जैनधर्म की मर्यादा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस हेतु पर्याप्त सामग्री भी उपलब्ध है।

टीकमगढ़ (मध्य प्रदेश) से पूर्व की ओर बारह मील दूर अहार नामक जैन अतिशय क्षेत्र है। यह एक पथरीला प्रदेश है। वर्ष में केवल कुछ इंच वर्षा होती है। उपज की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार के क्षेत्रों को जैन साधु अपनी तपश्चर्या हेतु चयन करते थे। बरसात में हरितकाय का अधिक उद्‌भव न होने के कारण उन की चर्या में हरितकाय के जीवों के विनाश से स्वयमेव रक्षा हो जाती थो, जैसा कि जैन साधुओं की शास्त्रोक्त परम्पराएँ हैं।

इस स्थान के सम्बन्ध में अभी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला कि यह क्षेत्र कब से महत्त्व एवं प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ तथा इस की धार्मिक अवस्था कब से प्रारम्भ होती है। प्रचुर मात्रा में जो सामग्री उपलब्ध है उस से ज्ञात होता है कि यह विक्रम संवत् १२०० के लगभग ही महत्त्व को प्राप्त हो चुका था। उक्त शताब्दी से पूर्व की अवस्था की जानकारी विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखती है। इस क्षेत्र को दूर देश की जनता भी श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी, विशेष कर जैन समाज अत्यधिक सम्मान देता था, तथा उस के दर्शन-परिक्रमा कर के अपने को गौरवशाली समझता था।

ऐतिहासिक दृष्टि से यहाँ चन्देल राजा मदन वर्मन का राज्य था उन्हीं के नाम पर इस स्थान का नाम भी 'मदनेश सागरपुर' पड़ा तथा यहाँ जो विशाल सरोवर अपनी अनन्त जलराशि से परिपूर्ण है उस का नाम भी 'मदन सागर' अब तक प्रसिद्ध है। इस का ज्वलन्त प्रमाण भगवान् शान्तिनाथ की मूर्ति के शिलालेख 'येन श्रीमदनेशसागरपुरे' से स्पष्ट है। शान्तिनाथ मन्दिर की शैली एवं

* आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तावित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्माण कला से प्रतीत होता है कि इस का निर्माण उस समय हुआ जिस समय गुजरात एवं अन्य स्थानों के मन्दिरों का निर्माण हुआ। समय-समय पर इस स्थान पर आक्रमण हुए तथा मन्दिर और प्रतिमाओं को खण्डित किया गया, जिन के अवशेष एवं चिह्न उपस्थित हैं। जैन धर्म की दिगम्बरी प्रतिमाएँ यहाँ तथा पड़ोसी क्षेत्रों में पर्याप्त मिलती हैं। उस समय श्वेताम्बर आम्नाय का विकास इस क्षेत्र में नहीं था। धीरे-धीरे प्राचीन सामग्री लोप होती जा रही है।

शान्तिनाथ मन्दिर की शैली नागर शैलियों आदि से पूरा सामंजस्य रखती है। जैन शास्त्रानुसार इस में गर्भगृह, वेदिका, परिक्रमा, क्षत्र एवं भामण्डल आदि चिह्न हैं जो जैन निर्माण कला के सर्वश्रेष्ठ प्रतोक हैं। यहाँ पर इन्द्र, इन्द्राणो, यक्ष, यक्षिणी, पद्मावतोदेवी, भैरव तथा यक्षपाल आदि जैन विधानानुशार स्थापित किये गये हैं।

खण्डित एवं अखण्डित दशा की यहाँ भगवान् शान्तिनाथ व अन्य तीर्थंकरों की सैकड़ों विशालकाय प्रतिमाएँ हैं जिन में २१ फ़ुट ऊँचाई तक की हैं। इस प्रतिमा को वणिक् शिरोमणि पाणाशाह ने प्रतिष्ठापित किया था, तभी से इस प्राचीन तीर्थ का अतिशय प्रकट हुआ। भगवान् शान्तिनाथ की मूर्ति कला की दृष्टि से अनुपम है।

यहाँ ऐसी जैन प्रतिमाएँ हैं, जिन के पाषाण इस क्षेत्र में प्राप्त नहीं होते। यह पाषाण जयपुर, फतेहपुर सीकरी आदि दूर देशों से लाये गये प्रतीत होते हैं।

यहाँ के अभिलेखों से विदित होता है कि विक्रम संवत् १००० के लगभग से जैनधर्म का पर्याप्त प्रसार अहार क्षेत्र में हो चुका था। इस स्थान पर १२८ शिलालेख उपलब्ध हैं।

इस सामग्री का आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन-अनुशीलन, तथा प्राचीन प्रकाशित अप्रकाशित साक्ष्य, ऐतिहासिक सन्दर्भ, किंवदन्तियाँ, पुरातात्त्विक सामग्री एवं प्राचीन भारतीय कला और शिल्प के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक मूल्यांकन करने पर न केवल कला और शिल्प सम्बन्धी नये तथ्य उद्घाटित होंगे, प्रत्युत तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों पर भी नया प्रकाश पड़ेगा।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संगोष्ठी-सेमिनार

डॉ० हीरालाल जैन

[भारतीय ज्ञानपीठ के तत्त्वावधान में आयोजित जैन साहित्य संगोष्ठी में विचारणीय विषयों पर डॉ० हीरालाल जैन के महत्त्वपूर्ण सुझाव प्राप्त हुए थे। वे यहाँ प्रस्तुत हैं।]

१. जैन साहित्य के जो प्राचीन ग्रन्थों के सन्दर्भ और उल्लेख ग्रन्थान्तरों में मिलते हैं उन का पूरा पूरा संकलन किया जाय, प्रकाशित व उपलब्ध जैन भण्डारों की ग्रन्थसूचियों में उन की खोज की जाय, जिन शास्त्रभण्डारों की सूचियाँ नहीं बनी हैं उन्हें बनाया जाय। इस सम्बन्ध का परिपत्र मुद्रित कराकर सब शास्त्रभण्डारों के संरक्षकों व शोध प्रवृत्ति वाले विद्वानों को भेजा जाय।

२. उपलभ्य किन्तु अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थों की सूची तैयार की जाय। उस के आधार से उन अप्रकाशित ग्रन्थों की जो प्रतियाँ उपलभ्य हैं उन की फोटो प्रतिलिपियाँ तैयार कराई जाँय व शोध छात्रों को उन के सम्पादन व अनुवाद करने की सुविधा दी जाय। इस कार्य द्वारा वे डाक्टरेट उपाधि भी अर्जित कर सकते हैं, ऐसे छात्र बहुत मिलते हैं।

३. पूर्व प्रकाशित किन्तु अब अप्राप्त ग्रन्थों की सूची तैयार की जाय और उन की उपलभ्य प्रतियों के आधार से नये संस्करण तैयार कराकर प्रकाशित किये जाँय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. एक सुलभ जैन ग्रन्थमाला की स्थापना की जाय जिस में वर्ष में लगभग १२५ पृष्ठों की १०-१२ पुस्तकें प्रत्येक लगभग सवा रुपये की मूल्य की योजना-वद्ध नाना विषयों पर हिन्दी में लिखा कर प्रकाशित की जाँय। साधन व आवश्यकतानुसार उन के अंग्रेज़ी व अन्य भाषाओं में भी अनुवाद प्रकाशित कराये जाँय।

५. कोश विवलियोग्रॉफी, विश्वकोश व इतिहास आदि के निर्माण की योजना उसी प्रकार हो सकती है जिस प्रकार कि हिन्दी विश्वकोश की योजना नागरी प्रचारणी द्वारा, तथा इसी प्रकार की योजनाएँ अन्यत्र संस्थाओं द्वारा चलायी जा रही हैं। ऐसी योजनाओं के लिए संस्थाएँ उचित माध्यम हो सकती हैं।

६. विश्वविद्यालयों में जैन-साहित्य और संस्कृति विषयक शोध कार्य के सम्वन्ध में जो पाँच वातें ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित परिपत्र में अनुच्छेद (क) से (ङ) तक कही गयी हैं, वे सव वास्तविक हैं और एक दूसरे से सम्वद्ध हैं। मुख्य आवश्यकता है : (१) जिन विषयों पर शोध कार्य हो रहा है उन की जानकारी उपलभ्य कराने की और (२) स्वीकृत हुए शोध प्रवन्धों, उन के संशोधित अथवा संक्षिप्त संस्करणों को यथा शीघ्र प्रकाशित करने की। यदि ये दो वातें ही हो सकें तो विषयों पर शोध में पुनरावृत्ति वचायी जा सकती है और शोध प्रवन्धों के स्तर को भी उठाया जा सकता है। प्रवन्धों के प्रकाशित न होने के कारण ही शोध-छात्र पर्याप्त सावधान रहने एवं परिश्रमी होने की आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि उन की यह कमजोरी दीर्घकाल तक और कभी कभी तो चिरकाल तक पाठकों के सम्मुख प्रकट नहीं होती।

५. जैन-साहित्य के मुद्रण प्रकाशन को गतिशील वनाने और उस का स्तर ऊँचा उठाने का उपाय यह है कि जितनी प्रकाशन संस्थाएँ हैं उन में सहयोग स्थापित किया जावे, जिस से प्रत्येक प्रकाशन संस्था के क्षेत्र को सीमित कर दिया जावे। जैसे कोई संस्था प्राचीन संस्कृत-साहित्य को अनुवाद सहित निकाले, कोई प्राकृत व अपभ्रंश साहित्य को तथा कोई हिन्दी, मराठी, गुजराती, वंगला आदि आधुनिक भाषाओं के साहित्य को। सम्भव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो सके तो इस में भी विषयानुसार अवान्तर भेद कर लिये जावें। इस से प्रत्येक प्रकाशन माला सुनियोजित और सुन्दर एवं एक रूपता को लिये हुए बनायी जा सकेगी।

८. मेरे विचार से साहित्य प्रकाशन की आवश्यकताओं को देखते हुए प्रकाशक संस्थाओं तथा व्यक्तियों की कमी नहीं है। कमी है उन में योजना और सहयोग की। इन संस्थाओं में यदि सहयोग की भावना उत्पन्न की जा सके तथा उपलब्ध धनराशि को व्यवस्थित रूप से खर्च किया जा सके तो सहज ही हमारी साहित्य प्रकाशन आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। यह बात अवश्य है कि अवैतनिक रूप से सम्पादन-अनुवाद आदि कार्य करने वाले विद्वानों की कमी होती जा रही है, तथापि समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था होने पर योग्य सम्पादकों की कमी अनुभव नहीं होगी।

९. ग्रन्थों के संस्करण दो प्रकार के निकाले जावें, जिन में काग़ज़, जिल्द बधाई आदि की दृष्टि से भेद किया जावे। सुलभ संस्करणों का मूल्य वैयक्तिक पाठकों की पहुँच के भीतर रखा जावे और राज-संस्करण ग्रन्थालयों आदि के लिए अच्छे काग़ज़ पर अच्छी जिल्दों सहित होने से उन का मूल्य अनुमानिक रूप से अधिक रखा जाय। विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का इतना विस्तार हुआ है कि योजना-बद्ध प्रयास करने से उन का विक्रय भी समुचित मात्रा में कराया जा सकता है।

१०. आज कल न ही कार्य करने योग्य विद्वानों की कमी है और न कार्य की। किन्तु दोनों में संयोजन-संतुलन स्थापित किये जाने के प्रयास का सर्वथा अभाव है। संस्कृत-प्राकृत अपभ्रंश के क्षेत्र में एम० ए० तथा शोधउपाधियाँ प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें कहीं कोई स्थायी कार्य नहीं मिलता जिस से वे इधर-उधर भटकते रहते हैं और निराशावश क्रमशः उन की बुद्धि और कार्यक्षमता भी कुंठित होती जाती हैं। संस्थाएँ यदि चाहें तो योजनाबद्ध रूप से इन सब भटकते हुए कार्यक्षम सुशिक्षितों से भले प्रकार कार्य लिया जा सकता है और जो पुराने अनुभवी विद्वान् की कमी होती है, उन से समुचित निर्देश प्राप्त कर उन की परम्परा को स्थिर रखा जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. यह स्वाभाविक है कि जैन-धार्मिक साहित्य का अपेक्षाकृत कम क्रय-विक्रय है किन्तु इस के लिए भी यदि प्रकाशकों के सहयोग से विज्ञापन प्रचार आदि की समुचित व्यवस्था की जावे तो बहुत कुछ मात्रा में सुधार किया जा सकता है। देश में ही नहीं विदेशों में भी प्रचार एवं एजेन्टों की स्थापना द्वारा ग्रन्थों की माँग बढ़ायी जा सकती है।

पूर्वोक्त समस्त समस्याओं के हल के लिए निम्न बातों की आवश्यकता है ?

(१) जैन साहित्य के प्रकाशकों की एक समिति का गठन किया जावे और प्रत्येक के तिमाही-छमाही अथवा वार्षिक प्रकाशन योजना पर सहयोगात्मक परिपूरक दृष्टि से विचार किया जावे।

(२) सब प्रकाशकों के सहयोग से एक केन्द्रीय कार्यालय स्थापित किया जावे जिस में आरम्भ में एक सुयोग्य विद्वान् और एक लिपिक की नियुक्ति की जावे। उस केन्द्र कार्यालय को पूर्वोक्त विषयों सम्बन्धी समस्त कार्य संचालन का भार सौंपा जावे।

(३) पूर्वोक्त प्रत्येक कार्य के विषय में एक एक परामर्श समिति नियुक्त की जावे जिन से केन्द्र कार्यालय अधिकारी निरन्तर संपर्क द्वारा उचित परामर्श प्राप्त करता रहे।

(४) उपलब्ध अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ अथवा उनकी फ़ोटो कापियाँ संग्रह करने का प्रयत्न किया जावे और इस कार्य के लिए एक विशेष कोश स्थापित किया जावे। इन्हीं अप्रकाशित ग्रन्थों के सम्पादन अनुवाद आदि कार्य के लिए संस्कृत-प्राकृत शोध-छात्रवृत्तियों की व्यवस्था हो जाने से अनेक प्रबुद्ध छात्रों को इस क्षेत्र की ओर आकृष्टकिया जा सकता है। जिन प्रकाशित ग्रन्थों के अच्छे संस्करण, अनुवाद व समालोचनात्मक अध्ययन आदि नहीं हुए हैं उन में भी इन शोध छात्रों को लगाया जा सकता है।

(५) समस्त शिक्षा संस्थानों एवं ग्रन्थालयों और विशेषतः जैन मन्दिरों, शिक्षा-संस्थानों, ग्रन्थालयों और विद्वानों से ग्रन्थों के क्रय-विक्रय हेतु सम्बन्ध स्थापित किया जावे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत सेमिनार, पूना

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

विगत दो वर्षों में प्राकृत भाषा और साहित्य के विशेषाध्ययन एवं सदियों से विस्मृत प्राकृत में निबद्ध जीवनमूल्यों का पुनः अध्ययन प्रचलित करने के उद्देश्य से 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' से प्राप्त आर्थिक सहयोग द्वारा दो संगोष्ठियाँ आयोजित हुई हैं। प्रथम संगोष्ठी सन् १९६८ में शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर में डॉ० ए० एन० उपाध्ये के निर्देशन में और द्वितीय पूना विश्वविद्यालय में 'संस्कृत प्रगति अध्ययन केन्द्र' में डॉ० दाण्डेकर के निर्देशन में सम्पन्न हुई। प्रथम संगोष्ठी में प्राकृत भाषा और साहित्य विषयक लगभग २८ निबन्धपाठ और दो विशिष्ट भाषण एवं द्वितीय में ३० निबन्ध पाठ और दो विशिष्ट भाषण हुए।

पूना का वेद, व्याकरण और भाषा विज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से भारत में विशिष्ट स्थान है। डॉ० पी० एल० वैद्य, डॉ० दाण्डेकर और डॉ० कत्रे जैसे मनीषी-साधक विद्वानों के अस्तित्व ने इस नगर को ज्ञानतीर्थ बना दिया है। यही कारण है कि देश-विदेश के अनेक अनुसन्धित्सु इस नगर में आकर विभिन्न विषयों पर शोध-खोज करते हैं।

इस वर्ष २३ जून से २७ जून तक प्राकृत अध्ययन संगोष्ठी उक्त नगर में सम्पन्न हुई। इन दिनों में कुल छह बैठकें हुईं। आदरणीय निर्देशक डॉ० दाण्डेकर समागत विद्वानों के भोजन-आवास एवं अन्य सुविधाओं की चिन्ता परिवार के मुखिया के समान करते थे। संगोष्ठी का आरम्भ प्राकृत साहित्य के वयोवृद्ध वरिष्ठ विद्वान् डॉ० ए० एन० उपाध्ये के उद्घाटन भाषण से हुआ। दिनांक २३ जून को अपराह्ण में चार बजे उद्घाटन हुआ एवं समागत विद्वानों का समवेत चित्र लिया गया। डॉ० उपाध्ये ने टंकित नौ पृष्ठों के भाषण में बताया कि भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं भाषाओं का अध्ययन प्राकृत अध्ययन के अभाव में अपूर्ण है। संस्कृत छाया के आधार पर किया जाने वाला प्राकृत का अध्ययन अत्यन्त सदोष है। प्राकृत का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से होना चाहिए। इस भाषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साहित्य में संस्कृति और जोवनमूल्य निहित हैं। अपभ्रंश साहित्य की समृद्धि का विवेचन करते हुए भसल<भ्रमर; कडप्प<कलापक जैसी शब्द व्युत्पत्तियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। आप ने बतलाया कि प्राकृत में निबद्ध 'गाहासत्तसई' ही एकमात्र असाम्प्रदायिक रचना है। अन्य भारतीय रचनाओं में साम्प्रदायिकता का कुछ न कुछ अंश अवश्य पाया जाता है। अतएव संस्कृति, इतिहास, साहित्य एवं भापाविज्ञान की यथार्थ जानकारी के लिए प्राकृत का अध्ययन-अध्यापन अत्यावश्यक है। प्राकृत साहित्य की समृद्धि का विवेचन करते हुए अध्यात्म, दर्शन, काव्य, नाटक, अलंकार, कोप, ज्योतिष, आयुर्वेद, गणित आदि विपयों के ग्रन्थों का निर्देश भी किया।

२४ जून की प्रथम बैठक में वयोवृद्ध विद्वान् डॉ० सुकुमार सेन का 'प्राकृत और बँगला भापा' शीर्षक निबन्ध पाठ हुआ। आप के इस निबन्ध में प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय आर्यभापाओं की प्रवृत्तियों का विश्लेपण किया गया था। मागधी प्राकृत की 'श' और 'ल' सम्बन्धी प्रवृत्ति बँगला में आज भी पायी जाती है। 'श' प्रवृत्ति का अस्तित्व तो बंगला की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक है। भापा वैज्ञानिक अनेक तथ्यों के विवेचन प्रसंग में आप ने बतलाया कि प्राचीन भारतीय आर्यभापा के वाक्यगठन की यह विशेषता है कि उस का गठन 'क्रियापद' के आधार पर होता था। क्रिया ही वाक्य का सर्वस्व थी, इसी कारण 'एक तिङ् वाक्यम्' का प्रचलन हुआ। पर मध्यकाल में वाक्य-गठन की यह प्रवृत्ति परिवर्तित हुई और क्रिया का स्थान संज्ञा ने ग्रहण किया। यहाँ आ कर आख्यात सविशेपण हो गया और वाक्य परिभाषा में भी परिवर्तन हुआ। आधुनिक भारतीय भापाओं में वाक्य का मूलाधार न तो संज्ञा है और न क्रिया ही, अपितु उस के गठन का आधार शब्दस्थिति है। शब्दस्थिति के अनुसार संज्ञा और क्रियारूपों में परिवर्तन होता है। संयुक्त शब्दों का विकास म० भा० आ० भापा युग में हुआ है, इस के पूर्व संयुक्त शब्द प्रचलित तो थे, पर उन का बाहुल्य न था। आ० भा० आ० भापा काल में आते-आते संयुक्त शब्दों का सरलीकरण प्रारम्भ हुआ और संयुक्त शब्द असंयुक्त के रूप में परिवर्तित होने लगे। डॉ० सेन ने भारतीय आर्यभाषा की वाक्य, शब्द एवं विशेषण सम्बन्धी प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी बैठक में दूसरा निबन्ध डॉ० महेश्वर नियोग का पढ़ा गया। इस निबन्ध का शीर्षक 'प्राकृत और असमी भाषा' था। डॉ० नियोग ने असमी भाषा के साथ अर्धमागधी प्राकृत और अर्धमागध अपभ्रंश का सम्बन्ध दिखलाया तथा प्राकृत की सामान्य प्रवृत्तियों को असमी भाषा में घटित किया। इस निबन्ध की उल्लेख योग्य दो बातें हैं—प्रथम यह है कि असमी भाषा की उत्पत्ति मागधी से न हो कर अर्धमागधी से हुई है। दूसरी बात यह है कि अव्यय और निपातन सिद्ध असमी शब्द अर्धमागधी के निकट हैं। वाक्य गठन और कृत्-तद्धित प्रत्ययों के रूप भी अर्धमागधी के समान हो हैं। असमी भाषा में रचित साहित्य में अर्धमागधी के आख्यानों का प्रतिबिम्ब भी परिलक्षित होता है।

तीसरा निबन्ध डॉ० टी० एन० दवे का 'प्राकृत और गुजराती एवं राजस्थानी' शीर्षक पढ़ा गया। इस निबन्ध में राजस्थानी और गुजराती भाषाओं के साथ प्राकृत के सम्बन्ध पर उतना प्रकाश नहीं डाला गया था, जितना प्राकृत प्रत्यय और प्राकृत शब्दों के रूपों का विवेचन किया गया था। 'क्त्वा' प्रत्यय के अर्थ में प्रयुक्त 'तूणं' और 'ऊणं' की व्युत्पत्ति का निर्देश करते हुए बताया कि यह प्रत्यय क्त्वा + नूनं = तूणं, ऊणं से निष्पन्न हैं। अस्ति अर्थ में (To be) प्रयुक्त अस्ति, अत्थि मूल क्रियाएँ नहीं हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस का मूल धातु < ऋच्छ् है, अतः ऋच्छति < अच्छति < अस्ति < अस्सई < अत्थि आदि रूप होते हैं। अस्सई से ही हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी का 'आई' क्रिया रूप निष्पन्न है। तक्षकार < तत्थकार < तष्टकार < थठेर < ठठेर या ठठेरा शब्द निष्पन्न है। पूर्वी बोलियों में 'र' 'ल' रूप में परिवर्तित होता है और पश्चिमी में 'र' 'ड़' के रूप में। रघु < लघु, घोरा < घोड़ा, सरक < सड़क आदि। पूर्वी प्रदेश के निवासी 'र' का उच्चारण 'र' या 'ल' रूप में करते हैं, पर शुष्कता का प्राधान्य होने से पश्चिमी प्रदेशवासी 'र' का उच्चारण 'ड़', 'ण' और 'र' रूप में करते हैं। यही कारण है पूर्वी बोलियों में मृदुता और पश्चिमी बोलियों में कठोरता पायी जाती है। डॉ० दवे ने घोड़ा शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते हुए कहा—घोटकस्य < घोडह < घोड़ो < घोड़ा रूप में सम्भव है। पट्ट शब्द पात्र से निष्पन्न है।

इस बैठक का चतुर्थ निबन्ध डॉ० जी. एस. गइ (G. S. Gai) का था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस निवन्ध का विषय 'अभिलेखीय प्राकृत' था। इस निवन्ध में विद्वान् लेखक ने अभिलेखीय प्राकृत भाषा का ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन किया। आप ने वतलाया कि ई० पू० तीसरी शती से ईसवी सन् की तीसरी शती तक के समस्त अभिलेख प्राकृत भाषा में ही लिखे गये हैं। संस्कृत में अभिलेख उत्कीर्ण कराने की प्रथा ई० सन् तीसरी शती से प्रारम्भ होती है। ग्रीक और मिश्र लिपि में भी प्राकृत अभिलेख उपलब्ध होते हैं। मैसूर राज्य में प्राकृत भाषा में तीस अभिलेख मिलते हैं। इन अभिलेखों की भाषागत विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

हमये<मया, हेममेव<एवमेव, हेवाह<एवमाह, सुमि<अस्मि, मगलं< मगरं, अलमिसु<अलमिपन्ति।

अभिलेखीय-प्राकृत के विवेचन प्रसंग में डॉ० गइ ने अशोक और खारवेल के अभिलेखों का भी विवेचन किया। सिक्कों पर उपलब्ध होने वाले अभिलेखों में इतिहास और भाषाविज्ञान सम्बन्धी मान्यताओं का ज़िक्र करते हुए वताया कि दिमिलियस के सिक्के में संयुक्त रेफ का लोप 'स्य' के स्थान पर 'स्स' और 'स' मिलते हैं। 'महाराजस्य' के स्थान पर 'महारजस' और 'अपरजितस्य' के स्थान पर 'अपरजितस' रूपों का पाया जाना प्राकृत की सामान्य प्रवृत्तियों के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रथम वैठक का पाँचवाँ निवन्ध डॉ० वी. एम. कुलकर्णी का 'कल्पलता विवेक में प्राकृत पद्यों का मूल' शीर्षक था। यह ग्रन्थ एल० डी. शोध संस्थान अहमदावाद से प्रकाशित है। डॉ० कुलकर्णी ने वतलाया कि 'उसुरुसुंभियाए' (पृ० १२७); 'कइकेसरी' (पृ० २६६); और चंकम्मंति (पृ० २६६) पद्यों के मूल वक्रोक्तिजीवितम् की लोचन टीका में; 'तहेति' (पृ० २७४) पद्य का सरस्वती कण्ठाभरण (पृ० ५०२) में एवं 'नीसासा' पद्य का गउडवहो काव्य में उपलब्ध है। कल्पलता की पल्लव टीका अनुपलब्ध है। डॉ० कुलकर्णी ने प्राकृत पद्यों के मूलरूपों और उन के संशोधित पाठों को भी उपस्थित किया।

छठा निवन्ध एम. जी० धडफले (M. G. Dhadphale) ने 'पालि में अधिवचन के पर्याय' शीर्षक निवन्ध पाठ किया। आप ने वतलाया कि अधिवचन शब्द का प्रयोग 'कुटीवासस्य अधिवचनं', 'कतमे धम्मा अधिवचनं' अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'निमित्तपथः अधिवचनं' के रूप में हुआ है। अतएव अधिवचनं = अभिवचनं = कृतवचनं = अतिवचनं = अधिकवचनं पर्याय सम्भव हैं। अधि शब्द के अर्थ अति, अधिक, अभिधेय, अर्थसाधन आदि हैं। अतएव अधिवचन का प्रयोग अभिधेय कथन, पर्यायवचन, अर्थसाधक वचन, अधिकारिक वचन इत्यादि अर्थ हैं। अंगुत्तरनिकाय और दीघनिकाय में व्याख्या की विधि या मोड़ को भी अधिवचन कहा गया है। सम्भावना, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, पर्यस्तापह्नुति अर्थों में भी अधिवचन का व्यवहार पालि साहित्य में हुआ है।

द्वितीय बैठक में पहला निबन्ध डॉ० ए० एम० घाटगे का 'अपभ्रंश भाषा' शीर्षक था। इस निबन्ध में डॉ० घाटगे ने अपभ्रंश भाषा के गठन पर प्रकाश डालते हुए व्याकरण के अनुसार स्वर और व्यंजन परिवर्तन की चर्चा की। अपभ्रंश भाषा में निबद्ध विषय और उस के शिल्प का भी निरूपण किया गया। वर्णविचार (Orthography) का विवेचन करते हुए प्रियउ < पिउ, तथा म, स और य के स्थान पर मा, सा, और जा के परिवर्तन सम्बन्धी उदाहरण दिये।

दूसरा निबन्ध डॉ० जोशी का 'अपभ्रंश, उस का विकास एवं साहित्य' शीर्षक था। डॉ० जोशी ने वलभी के धरसेन से आरम्भ कर तेरहवीं शती तक विकसित होने वाली अपभ्रंश भाषा के रूपों का विस्तारपूर्वक कथन किया। इस निबन्ध में अपभ्रंश के शिष्ट और ग्राम्य रूप की भी चर्चा की गयी। कतिपय देशी शब्दों के उदाहरण भी दिये। अपभ्रंश के साहित्यिक विकास का निरूपण करते हुए काव्यों के खण्ड, सन्देश, मुक्तक, प्रतीकात्मक, रास, चर्चरी, फागु आदि भेद-प्रभेद कर उन के स्थापत्य का विवेचन किया। अपभ्रंश काव्य की अनेक विशेषताओं में दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं : (१) विविध वार्णिक और मात्रिक छन्दों के प्रयोग। छन्दों के वैविध्य और उन के रूपविकास का परिज्ञान अपभ्रंश साहित्य द्वारा ही सम्भव है। (२) लोककथाओं और लोकगीतों को आभिजात्य या परिनिष्ठित साहित्य का रूप दिया गया है। अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन से लोकधर्म और लोकमान्यताओं को यथार्थरूप में जाना जा सकता है।

इस गोष्ठी में तीसरा निबन्ध डॉ० राजाराम जैन का 'अपभ्रंश साहित्य की अप्रकाशित कृति पुण्णासव कहा' शीर्षक पढ़ा गया। डॉ० राजाराम जैन ने पुण्णासव की प्राप्त प्राचीन प्रतियों के परिचय तथा पुण्यास्रव कथा के विकास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर प्रकाश डाला। पुण्यास्रव कथा एक लोक कथा है, कवि और लेखकों ने इसे धार्मिक साँचे में फिट कर आभिजात्य काव्य का रूप दिया है। इस प्रसंग में जैन-कथाओं की प्रमुख शैलियों और उन के वैशिष्ट्य का भी निरूपण किया गया है। अन्त में पुण्यास्रव कथा के काव्य और सांस्कृतिक मूल्य की चर्चा की गयी।

चौथा निवन्ध श्री सुरेन्द्रकुमार का 'अपभ्रंश और हिन्दी छन्द' शीर्षक था। श्री सुरेन्द्रकुमार ने अपभ्रंश छन्दों का विश्लेपण कर उन की हिन्दी छन्दों के साथ तुलना की और उन के स्रोतों पर भी प्रकाश डाला गया। महाकवि तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, विद्यापति, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, पन्त, महादेवी, जयशंकर प्रसाद आदि हिन्दी कवियों के छन्दों का मूलस्रोत अपभ्रंश छन्द हैं। सुरेन्द्र जी ने तुलनात्मक उदाहरण उपस्थित कर लोकभापा, काव्यशैलो तथा उस से सम्वद्ध छन्दों पर भी प्रकाश डाला।

पञ्चम निवन्ध डॉ० एम० ए०, महेण्डले (Mehendle) का था। आपने 'तक्कारि जातक की १२ वीं गाथा में उल्लिखित नाम' का विश्लेपण करते हुए वतलाया कि वोधिसत्त्व 'टक्कारिअ' नाम के ब्राह्मण थे। टक्कारिआ < तस्सक्कारिया < तस्मै कार्यम् < तत्कार्यम् रूप में व्युत्पत्ति सम्भव है। 'टक्कारिअ' जातक की कथावस्तु पर प्रकाश डालते हुए 'टक्कारिअ' शव्द का सम्वन्ध आर्य और द्रविड परिवार की भाषाओं के साथ वतलाया।

श्री अनन्त नारायन (Anant Narayan) ने प्राकृत और द्रविड भाषाओं के सम्वन्ध का विश्लेपण किया। आप के निवन्ध का शीर्पक था—'प्राकृत और द्रविड भापाएँ'। निवन्ध में वतलाया गया कि मुण्डा भापा का विकास आर्यभापा परिवार से नहीं हुआ, इस का सम्वन्ध द्रविड भापाओं के साथ है। प्राकृत भापा की समीकरण और विपमीकरण की प्रवृत्ति द्रविड भाषाओं में भी पायी जाती है। प्राकृत के सन्धि नियम द्रविड भापाओं के तुल्य हैं। यथा—अधि + एकड = अधिक्कड; नर + इन्द = नरेन्द। वाक्य रचना की दृष्टि से प्राकृत भाषा के अनेक तत्त्व द्रविड भापाओं में मिलते हैं। यथा—"तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओ-वासगस्स एक्का हिरण्णकोडी निहाण पउत्ता, एक्का वड्ढिपउत्ता, एक्का पवि-त्थरपउत्ता, एक्के वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं।" द्रविड भापाओं में भी इसी प्रकार वाक्य का आरम्भ पष्ठी, तृतीया, सप्तमी आदि विभक्तियों को आरम्भ में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रख कर 'णं' जैसे पद वाक्यालंकार के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

इसी बैठक में प्रो० पटवर्धन ने 'वज्जालग्ग में समाहित ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्री के विश्लेपण' शीर्षक निवन्ध का पाठ किया। हिमालय, मलयाचल, श्रीपर्वत आदि के आधुनिक परिचयों को विस्तार पूर्वक उपस्थित किया। नदियों में गंगा, रेवा, नर्मदा आदि का और लोकधर्म में देव, देवी, पुष्प, वृक्ष, प्रभृति की पूजा का विवेचन किया। प्रो० पटवर्धन ने 'वज्जालग्गं' की भौगोलिक और ऐतिहासिक सामग्री का विस्तारपूर्वक निरूपण किया।

श्री एम० जी० पांसे (M. G. Panse) ने 'प्राकृत और मराठी' शीर्षक निवन्ध का पाठ किया। मराठी और महाराष्ट्री प्राकृत की सामान्य प्रवृत्तियों की तुलना करते हुए मराठी साहित्य पर प्राकृत के शैलीगत प्रभाव का विश्लेपण किया। अपभ्रंश के सभी छन्द मराठी में पाये जाते हैं। निवन्ध में वतलाया गया कि आधुनिक लोकभापाओं में मराठी का वही स्थान है, जो प्राकृत भापाओं में महाराष्ट्री प्राकृत का।

डॉ० वापट ने मराठी का सम्वन्ध प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से जोड़ते हुए पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के समान तत्त्वों का विवेचन किया। आपने वतलाया कि सन्त ज्ञानेश्वर पर जैन और वौद्ध साहित्य का पर्याप्त प्रभाव है। गीता की ज्ञानेश्वरी टीका श्रमण विचारों का प्रतिविम्व है। 'आराहणा' शब्द की व्युत्पत्ति प्रस्तुत करते हुए कहा 'आराहण' मृत व्यक्तियों के स्थान का नाम है। अहारे—मृतव्यक्तिस्थाने के रूप में प्रयुक्त है। नीच<णिच्च<निच्च<नीच; पलँग पोसण<पादपुंछण; भारी<भद्द<भद्र; वाणी<वायणी; वाचन<वायण; हिय<हिद्दं<हृदय, आदि शब्दों की व्युत्पत्तियाँ वतलायीं।

इसी बैठक में डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने, 'प्राकृत और हिन्दी' शीर्षक निवन्ध का पाठ किया। आप ने इस निवन्ध में ऐसे संस्कृत शब्दों की भी चर्चा की, जो मूलतः प्राकृत के हैं, पर उन का संस्कृतीकरण कर लिया गया है। प्राकृत के काव्यरूपों का हिन्दी के काव्यरूपों पर पूरा प्रभाव है। हिन्दी की कथानक रूढ़ियाँ प्राकृत कथाओं से विकसित हैं। हिन्दी के चोखा<चुक्ख; नाई<णाविय<नापित; मांड़<मण्डग; वाप<वप्प; ओखल<उक्खल; गड़रिया<गड्डुरिय; तोपना<तोपिय; लात<लत्त, लत्ता शब्दों का व्युत्पत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलक विश्लेषण किया।

इसी बैठक में डॉ० एन० टाटिया ने 'कम्मसच्चा हु पाणिणो' शीर्षक निवन्ध पढ़ा। इस निवन्ध में डॉ० टाटिया ने 'कम्मसच्चा' की पालि और प्राकृत के अनेक उद्धरण प्रस्तुत कर व्याख्या की। कम्मसच्चा के मूलरूप कर्मस्वक, कर्मसग, कम्मस्सकड, कम्मस्सक्का आदि वतलाये। 'कम्मसच्चा हि पाणिणो' का रूपान्तर या पाठान्तर 'कम्मसव्वा हि पाणिणो' सम्भव है। इस प्रसंग में पालि त्रिपिटक के समानान्तर उद्धरण भी दिये। 'कम्मसच्चा' का टीकाकारों के अनुसार 'कर्मसत्या' अर्थ लिया गया है, पर इसका अर्थ 'कर्मसत्त्वा हि प्राणिनः' अधिक तर्कसंगत है।

इसी संगोष्ठीमें डॉ० एच० सी० भायाणी ने 'प्राचीन मराठी प्रत्ययोंके मूल रूप' शीर्षक निवन्ध का पाठ किया। भायाणी ने मराठी इव, इवा प्रत्ययों का सम्वन्ध प्राकृत के साथ वतलाया। इव—इमा प्राकृत, इमा–अपभ्रंश और इमन्–संस्कृत प्रत्ययोंसे मराठीका 'इव' निस्सृत है। चिय—प्राकृत चेय, चिव तथा चैव—संस्कृत से सम्वन्धित हैं। प्राकृत य, मराठी च और संस्कृत त्य का भी सम्वन्ध है। मराठी चव—चय–त्य (च्च प्राकृत) का रूप है। यथा—अग्गिच्च < आग्नेय; अग्गिच्चाय, दिविच्चग; सगणिच्चा (स्वर्गीया); हत्थिचग—(हाथमें आभूपण); हम्मच्च < अस्मदीय; मालविच्च < मालवीय; अन्नच्चय < अन्नदीयके रूपमें विश्लेपित किये जा सकते हैं। डॉ० भायाणी ने वतलाया है कि मराठीके प्रत्यय जितने प्राकृत के साथ सम्वन्धित हैं, उतने संस्कृत से नहीं। अधिकांश प्राचीन प्रत्यय महाराष्ट्री और अर्धमागधी के समान है।

२६ जून को आयोजित प्रथम संगोष्ठी में पहला निवन्ध पाठ श्री वी० एन० झा का 'प्राकृत और मैथिली' शीर्षक हुआ। इस निवन्ध में झा जी ने मैथिली भापा की उत्पत्ति 'मागधी' प्राकृत से वतलाते हुए प्राकृत और मैथिली की सामान्य विशेपताओं का तुलनात्मक निरूपण किया। मैथिली शब्द प्राकृत से निस्सृत हैं, की सिद्धि करते हुए कचहरी < कच्चहर < कृत्यगृह; पीढा—पीढीया < पीढिआ < पीठिका; कादों—कद्दम < कर्दम; मजूर < मज्जुर < मयूर; रथ्या < रक्षा आदि उदाहरण उपस्थित किये।

इस बैठकमें दूसरा निवन्ध 'प्राकृत और भोजपुरी' शीर्षक डॉ० नेमिचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्री ने पढ़ा। भोजपुरी का प्राकृत के साथ सम्बन्ध निर्धारित करते हुए भोजपुरी और प्राकृत ध्वनितत्त्व पर प्रकाश डाला। प्राकृत के समान भोजपुरी में ए और ओ ह्रस्व रूप प्रकट करने के लिए ऐ और औ का व्यवहार किया जाता है। यथा—

पिया पिया कहत पियर भइल देहिया।
तोऽहके देवो देवी मधुआ के घरवा॥

इसी प्रकार गोड़वा, गोरिया, वटलोहिया आदि भोजपुरी शब्दों में ऐ और ओ का उच्चारण अर्द्ध संवृत ह्रस्व, अग्र या पश्च स्वर के रूप में होता है। कारक रचना, धातु—क्रिया रूप, एवं तद्धित प्रत्ययों में प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट रूप में मिलता है। भव अर्थ वतलाने के लिए भोजपुरी में 'ई' प्रत्यय होता है, जिस का सम्बन्ध प्राकृत इल्ल से है। इसी प्रकार भोजपुरी 'रू' प्रत्यय का प्राकृत रूव से, वा, या अथवा आ का प्राकृत के 'वत' प्रत्यय से इला का इल्लअ से सम्बन्ध है। यथा—

गम + ई = गमई < गामिल्ल तोन + इल = तोनइल < तुन्दिल्ल; गो + रू = गोरू < गोरूव गभ + रू = गभरू < गभरूव ; (वालक); मेहरा + रू = मेहरारू < महिलारूव < महिलारूप।

इसी संगोष्ठीमें डॉ० के० वी० त्रिपाठी ने 'प्राकृत और ओड़िया' भाषा शीर्षक निवन्ध पढ़ा। इस निवन्ध में डॉ० त्रिपाठी ने ओड़िया की उत्पत्ति मागधी प्राकृत से वतलायी। ओड़िया शिक्षके काहिले < सिक्खकेहिं < शिक्षकेभिः के रूप में व्युत्पत्ति प्रस्तुत की। तहुँ, पइँ, तहिं, कहिं आदि ओड़िया प्रत्ययों की व्युत्पत्ति भी प्राकृत से वतलायी। स्वरलोप, व्यञ्जनलोप, स्वरागम, व्यञ्जनागम, समाक्षरलोप एवं वर्णविपर्ययों के उदाहरण भी उपस्थित कर ओड़िया का प्राकृत के साथ सम्बन्ध निर्धारित किया।

अनन्तर डॉ० जी० वी० देवस्थली ने 'ऋग्वेद में प्राकृततत्व' शीर्षक निवन्ध का पाठ किया। आपने वतलाया कि हेम ने अपने व्याकरण में जिन निपातों का उल्लेख किया, वे सभी ऋग्वेद में प्राप्य हैं। इ—इम, उ—ऊ, ण प्रत्यय मूलतः प्राकृत के हैं, ये प्राकृत प्रत्यय ऋग्वेद में अपने मूल रूप में पाये जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता–ताव<तस्मात् प्रयुक्त है। त्व, त्वत् और इमन् प्रत्ययों का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है, जिन में अधिकांश प्रत्यय प्राकृत के हैं। √तड्–ताड वेद में हैं, जो प्राकृत के तद्धितो के निकट हैं। वैदिक सन्धि के नियम प्राकृत सन्धि के तुल्य हैं।

पश्चात् 'जैन लेखकों का संस्कृत साहित्य में योगदान' शीर्षक निवन्ध श्री ई० डी० कुलकर्णी ने पढ़ा। वताया कि जैन लेखकों ने युगानुसार भाषा का रूप गढ़ा और काव्य, नाटक, व्याकरण, छन्द, अलंकार, कोष, आचार ग्रन्थ एवं ज्योतिष विषयक रचनाएँ लिख कर संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की।

'कुवलयमाला : सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक निवन्ध का पाठ डॉ० पी० एम० उपाध्ये ने किया। इस निवन्ध में कुवलयमाला की सांस्कृतिक सामग्री का विवेचन करते हुए १८ प्रकार के घोड़े, ६४ प्रकार के ज्ञान, ७२ प्रकार की कलाएँ; शक-यवन-वर्वर–शवर-पुलिन्द-किरात आदि जातियों का विवेचन किया। आक्षेपिणी—मनोनुकूल, विक्षेपिणी—मन:प्रतिकूल, संवेगिनी—ज्ञानोत्पत्ति कारक और णिव्वेयणी—वैराग्योत्पादक कथाओं का प्रतिपादन करते हुए ग्राम, नगर, खेट, पट्टन, मट्टंव आदि की व्याख्याएँ वतलायीं। विभिन्न देशवासियों की वेशभूषा, स्वभाव-गुण एवं रीति-रिवाजों का भी विश्लेषण किया।

श्री० के० एस० अर्जुनवाडकर ने 'चन्दलेहा की कुछ उपलब्धियाँ' शीर्षक निवन्ध में शिव की दक्षिणामूर्त्ति एवं उन के साथ प्राप्त होने वाले वट वृक्ष के सम्वन्ध के कारण चन्दलेहा के पाठ पर प्रकाश डाला। रुद्रदास के चन्दलेहा पर भाव की दृष्टि से कालिदास का प्रभाव और शैली की दृष्टि से भवभूति का प्रभाव है। आप ने 'चन्दलेहा' के सम्पादन में हुई भूलों की ओर भी ध्यान दिलाया।

इसी संगोष्ठी में श्रीमती डॉ० रत्ना एन० श्रीयन् ने 'पुष्पदन्त के कतिपय महत्त्वपूर्ण शब्दों की व्युत्पत्ति' शीर्षक निवन्ध का पाठ किया। इस निवन्ध में आवडे<आभासते<भासते (आवड़ू गुजराती); कडिल्ला<कटिवस्त्र, कडि<कटि; कणइल्ला<कणईलता (कण + इल्ल); गहिल्ल<<ग्रह + इल्ल (गहिसूं—पुरानी गुजराती); पिंड<पीठ, पेढ; महसंकडिल्ल—निश्छिद्र आदि शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक विवेचन किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वी० जी० राहुरकर का 'प्राकृत ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन' निवन्ध पढ़ा गया। इस निवन्ध में प्राकृत के सम्पादित ग्रन्थों की समीक्षा की तथा उन के पाठों का आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया। इस निवन्ध में प्रकाशित प्राकृत ग्रन्थों का सर्वेक्षण भी दिया गया है।

'विश्वजनीन जैन विचार' शीर्षक निवन्ध का प्रो० एम. एस. रणदिवे ने पाठ किया। इस निवन्ध में जैन दृष्टि से गुण, पर्याय, द्रव्य, आस्रव, जीव आदि का स्वरूप वतलाया तथा विश्वहित की दृष्टि से जैन विचारों की उपादेयता पर भी प्रकाश डाला।

डॉ० माइंकर (Mainkar) ने 'घनश्याम' कवि के महत्त्व और मूल्य पर निवन्ध उपस्थित किया। इस निवन्ध में घनश्याम के पाण्डित्य और कवित्व का पूरा विवेचन किया गया है। डॉ० के. पो. जोक ने 'रुक्मिणी हरण' पर निवन्ध प्रस्तुत किया। आप ने इस को वारहवीं शती की ईहामृग रचना सिद्ध की और हेमचन्द्र के व्याकरणानुसार प्रयुक्त भाषा का भी विश्लेषण किया। इस रचना में पाँच स्त्री पात्र हैं तथा रचना पर महाराष्ट्री भाषा का प्रभाव है। √घोट्ट पीने अर्थ में, √चुक्क चूकने अर्थ में प्रयुक्त है। मागधी, शौरसेनी, अवन्ती, प्राच्या एवं दाक्षिणात्या के प्रयोग भी मिलते हैं।

डॉ० अर्जुनवाडकर ने 'ढोल्ला' पर निवन्ध पढ़ा। 'ढोल्ला चंपयवण्णी' अंश का विश्लेषण करते हुए ढोल्ला शब्द के नायक, विट, पति, प्रिय आदि अर्थ वतलाये। ढोल्ला की व्युत्पत्ति वतलाते हुए ढुल्ल—<भ्रम—भ्रमर—अर्थात् वह रसिक व्यक्ति जो भ्रमर के समान इधर-उधर रसपान करता हो, ढोल्ला है, अर्थ किया।

डॉ० झामरे ने 'कर्पूर मञ्जरी के नये संस्करण की आवश्यकता' पर निवन्ध प्रस्तुत किया। वासुदेव की टीका सहित प्रकाशित वामनाचार्य के संस्करण की समीक्षा की। स्टेन कोनो और मनमोहन घोष द्वारा सम्पादित संस्करणों की समीक्षा करते हुए एक नये संस्करण की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

डॉ० एस. डी. लद्दू (S. D. Laddu) ने प्राकृत अध्ययन का सर्वेक्षण उपस्थित किया। आप ने देश-विदेश में किये जाने वाले प्राकृत अध्ययन का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षिप्त, किन्तु अपूर्ण सर्वेक्षण प्रस्तुत किया, जो अनेक भ्रान्तियों से परिपूर्ण था।

उपर्युक्त निबन्धपाठों के अतिरिक्त डॉ० एन० टाटिया और डॉ० सुरु के अभिभाषण भी हुए। डॉ० टाटिया ने 'दार्शनिक विचारों का वाहन प्राकृत' पर अपना टंकित भाषण पढ़ा। इस भाषण में श्वेताम्बर अंग-उपांग साहित्य के प्रमाणों द्वारा जीव-अजीवादि तत्त्वों एवं प्रमाण-नयादि चिन्तनों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। जहाँ-तहाँ कुन्दकुन्द का नाम भी ले लिया गया था।

दूसरा टंकित भाषण डॉ० सुरु (N. G. Suru) का 'परुसा सक्कअभासा पाउअभासा य होइ सुउमारा' पर हुआ। इस टंकित भाषण में प्राकृत के काव्य सेतुबन्ध, गउडवहो, कर्पूरमंजरी, चन्द्रलेहा प्रभृति के काव्य मूल्यों का सोदाहरण विवेचन किया गया।

२७ जून को प्रातःकाल की बैठक में डॉ० घाटगे द्वारा विवरण प्रस्तुत किया गया, जिस में निम्नलिखित बातों की अनुशंसा की गयी।

अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं का मूलस्रोत मध्यकालीन आर्य-भाषाएँ हैं, इन में प्राकृत का प्रमुख स्थान है। अतएव प्राकृत का अध्ययन आवश्यक है। इस की पूर्ति के लिए—

१. प्राकृत शब्दकोश का प्रकाशन।

२. प्राकृत और अपभ्रंश के अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन।

३. मध्य भारतीय आर्यभाषाओं के शब्दकोशों का प्रकाशन।

४. प्राकृत और जैन पारिभाषिककोश का प्रकाशन।

५. आगम और टीका ग्रन्थों के आलोचनात्मक संस्करणों का प्रकाशन।

६. प्राकृत साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन और प्रकाशन।

७. संस्कृत विभाग के अन्तर्गत प्राकृत भाषा और साहित्य का स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्ययन।

८. भारत के समस्त विश्वविद्यालयों में प्राकृत अध्ययन हेतु स्वतन्त्र विभागों की स्थापना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नातक-शिविर, सागर

डॉ० परमेष्ठीदास जैन

भारतीय संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में जैन वाङ्मय और संस्कृति के उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए १ से २१ जून १९६९ तक वर्णीभवन, सागर में स्नातक शिविर का आयोजन किया गया था। तीन सप्ताह का यह शिविर डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी के परामर्श पर 'वर्णी स्नातक परिषद्' के तत्त्वावधान में आयोजित था। शिविर की सामान्य परिकल्पना इस प्रकार थी—

१. अनुसन्धित्सु स्नातकों को शोधकार्य के लिए विषय चयन तथा शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा तैयार करने में प्रायः भारी कठिनाई होती है। अतएव शिविर में सम्मिलित अनुसन्धित्सु स्नातकों को शोध कार्य के लिए विषयचयन तथा शोध प्रबन्ध की रूपरेखा तैयार करने में सहयोग दिया जाये और शोध-कार्य करने का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाये।

२. पी–एच० डी० के लिए शोधकार्य में संलग्न स्नातक अनेक कारणों से अपने कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न नहीं कर पाते। शिविर में सम्मिलित ऐसे स्नातकों के शोध प्रबन्धों को पूर्णता दिलाने का प्रयत्न किया जाये।

३. स्नातक पर्याप्त समय और शक्ति लगा कर शोधकार्य करते हैं किन्तु पारस्परिक सहयोग और योजनाबद्ध कार्यक्रम के अभाव में वह सारा कार्य बिखरा-बिखरा-सा रहता है। शिविर में सम्मिलित पी-एच० डी० प्राप्त स्नातक अपने अग्रिम अध्ययन की एक ऐसी सामूहिक योजना बनायें जिस के अन्तर्गत कार्य तो सभी अपनी-अपनी रुचि के विषयों पर स्वतन्त्र रूप से करें, किन्तु पूरे कार्य में एक ऐसी एकसूत्रता हो कि कार्य की प्रत्येक इकाई एक बड़ी योजना की पूरक हो।

४. भारतीय विश्वविद्यालयों में जो शोधकार्य हुआ है और हो रहा है, उस में एकांश ही प्रकाश में आ पाता है। शिविर में सम्मिलित स्नातकों के अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों आदि के प्रकाशन के विषय में समाधान का प्रयत्न करें।

५. प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन करने वाले विद्वानों की दिनों-दिन कमी होती जा रही है। जो विद्वान् सम्पादन कार्य कर भी रहे हैं, वह भी कई प्रकार की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठिनाइयों के कारण यथाशीघ्र पूरा नहीं हो पाता। शिविर में सम्मिलित ऐसे स्नातक अपने कार्य को पूर्णता दें या आगे बढ़ायें।

६. नयी पीढ़ी के अनेक विद्वान् प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन करना चाहते हैं, किन्तु इस विषय की व्यावहारिक जानकारी प्राप्त करने के साधन न मिल पाने के कारण वे इस कार्य में प्रवृत्त नहीं हो पाते। शिविर में सम्मिलित ऐसे स्नातकों को सम्पादन कार्य की व्यावहारिक जानकारी दी जाये।

७. प्राचीन वाङ्मय को शास्त्रीय पद्धति से पढ़ने-पढ़ाने की परम्परा दिनों-दिन समाप्त होती जा रही है, इस लिए ग्रन्थ पूरी तरह अनुगत नहीं हो पाते। शिविर में सम्मिलित स्नातक शास्त्रीय पद्धति से अध्ययन-अध्यापन करने का व्यावहारिक प्रयोग करें तथा उस की महत्ता और उपयोगिता को प्रतिष्ठापित करें।

८. प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराएँ धीरे-धीरे समाप्तप्राय होती जा रही हैं। शिविर में सम्मिलित स्नातक कतिपय विशिष्ट प्राचीन परम्पराओं का व्यावहारिक प्रयोग करें तथा उन के पुनर्जागरण का प्रयत्न करें।

९. महानगरीय सभ्यता के विकास के कारण व्यक्ति इतना आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है कि एक ओर समाज के प्रति उस का दायित्वबोध समाप्त हो रहा है, दूसरी ओर यदि वह चाहे भी तो भी परिस्थितियों के कारण दायित्व का निर्वहण नहीं कर पाता। शिविर में सम्मिलित स्नातक समाज के प्रति अपने इस दायित्व-बोध के विषय में पर्यालोचन करें तथा सामाजिक दायित्व के प्रति नयी पीढ़ी के मन में आस्था जगाने का प्रयत्न करें।

१०. शिविर में सम्मिलित स्नातकों का साहित्य तथा शिविर के दिनों में स्नातक जो कार्य सम्पन्न करें वह आमंत्रित एवं अनुमति प्राप्त सम्प्रेक्षकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत किया जाये।

११. सार्वजनिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत तपोनिष्ठ धर्मगुरुओं एवं सुप्रसिद्ध विचारकों के टेप किये हुए विशिष्ट प्रवचन, विद्वानों की मननीय वार्ताएँ, सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षकों तथा अनुभवी सामाजिक कार्यकर्ताओं के इंटरव्यू, प्राचीन और आधुनिक कवियों के चुने हुए पद तथा ललित कृतियों का प्रसारण, सांस्कृतिक महत्त्व के चित्रों का प्रदर्शन, शिविर में सम्मिलित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नातकों द्वारा हिन्दी, अँगरेज़ी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में आयोजित परिचर्चा और विचार गोष्ठियाँ आदि।

प्रतिक्रियाएँ

इस परिकल्पना का सम्पूर्ण भारत में व्यापक स्वागत हुआ तथा विद्वानों, अनुसन्धित्सुओं और सम्भ्रान्त नागरिकों के अनेक उत्साह भरे पत्र प्राप्त हुए। भारतीय विद्याओं विशेष कर जैन विद्याओं के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान् डाक्टर आ० ने० उपाध्ये, कोल्हापुर के पत्र को नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है—

"It is indeed laudable on the part of the Varṇī-Snātaka-Parishad to organize a Seminar on Jaina Literature and Culture during the summer;and that this is being held at Sagar from the Ist to 21st June. The scheme of the Seminar is quite nice. My good wishes are with you all. To my regret, I am already committed to certain duties at this end during the month of June. I very much regret, therefore, my inability to participate in this Seminar. Indeed this is a loss for me. Please excuse my inability and convey the same to my colleagues over there."

—*A. N. Upadhye, Kolhapur.*

उद्घाटन समारोह

१ जून को सायंकाल ७–३० बजे सागर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० महादेव प्रसाद शर्मा ने शिविर का उद्घाटन किया तथा शिविर में सम्मिलित वरिष्ठ स्नातक डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन, उज्जैन ने समारोह की अध्यक्षता की।

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन ने अपने प्रारम्भिक वक्तव्य में बताया कि विश्वविद्यालय तथा सामाजिक स्तर पर आयोजित होने वाले समारोहों की परम्परा से सर्वथा भिन्न यह अपने प्रकार का एक विशिष्ट आयोजन है। उच्चस्तरीय अध्ययन की दिशा में किये गये इस प्रकार के सामूहिक प्रयत्नों से शोधकार्य को जो गति मिलेगी और अनुसन्धाताओं को जो दिशाबोध प्राप्त होगा उस से भारतीय प्राच्य विद्याओं के अनुशीलन का पथ प्रशस्त होगा तथा भारत के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांस्कृतिक इतिहास में उस की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जा सकेगा।

शिविर का उद्घाटन करते हुए डॉ० महादेवप्रसाद शर्मा ने कहा कि भारतीय विश्वविद्यालयों में अभी जैन विद्याओं के अध्ययन की समुचित व्यवस्था नहीं है। ऐसे प्रयत्न किये जाने चाहिए जिस से प्रत्येक विश्वविद्यालय में इस प्रकार के अध्ययन की व्यवस्था हो सके। उन्होंने सागर विश्वविद्यालय में जैन विद्याओं के अध्ययन की व्यवस्था के लिए जैन समाज से आर्थिक सहयोग की अपील की और आशा व्यक्त की कि सागर को जैन धर्म के अध्ययन का केन्द्र बनाने के प्रयत्न किये जायेंगे।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन ने इस बात पर बल दिया कि यदि इस शिविर से सागर में वर्णी शोध संस्थान का बीजारोपण हो सका तो एक बहुत बड़ी बात होगी।

परिचय पुस्तिका

उद्घाटन समारोह के अवसर पर शिविर की परिचय पुस्तिका प्रकाशित की गयी थी, जिस के कवर पृष्ठ पर बोध वाक्य है—"समयं गोयम मा पमायए"। इस पुस्तिका में शिविर की परिकल्पना, प्रतिक्रियाएँ और पत्रांश, शिविर में शामिल होने वाले विद्वानों, अनुसन्धाताओं तथा अनुसन्धित्सुओं के नाम, अनुसन्धान के लिए स्वीकृत विषय, सम्पादन तथा प्राचीन पद्धति से अध्ययन के लिए प्रस्तावित ग्रन्थों का विवरण तथा दैनिक और सामूहिक कार्यक्रम दिये गये हैं।

शिविर में सम्मिलित स्नातक और अनुसन्धान कार्य

शिविर में विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा संस्थाओं से सम्बद्ध स्नातक शामिल हुए जिन में साहित्य, दर्शन, इतिहास, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पुरातत्त्व, कला, भाषा-विज्ञान एवं गणित के विशेषज्ञ एवं अनुसन्धित्सु थे। अनुसन्धान कार्य करने के इच्छुक स्नातकों ने शोध कार्य के लिए विषयों का चुनाव किया तथा प्रबन्ध की रूपरेखा तैयार की। शोधकार्य में संलग्न स्नातकों ने अपने कार्य को आगे बढ़ाया तथा पी-एच० डी० प्राप्त स्नातकों ने अपने अग्रिम अध्ययन की योजना बनायी। परिचय सहित संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी : सोमदेव सूरि कृत यशस्तिलक पर आप का शोध प्रबन्ध प्रकाशित है, जिस पर उत्तर प्रदेश सरकार ने पाँच सौ रुपयों का विशेष पुरस्कार दिया है। सम्पादित ग्रन्थों में आचार्य विद्यानन्द कृत सत्यशासन-परीक्षा तथा अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत कर्मप्रकृति प्रकाशित हैं। जैन साहित्य, संस्कृति और समाज से सम्बन्धित सौ से अधिक निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। शिविर में आप ने अन्य स्नातकों के कार्यों में सहयोग तथा निर्देशन का कार्य तो किया ही स्वयं भी समन्तभद्र ग्रन्थावली और प्रमेय-कंठिका का सम्पादन कार्य किया।

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, रायपुर : आप का शोध प्रबन्ध धनपाल कृत भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा काव्य भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो रहा है। 'हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ' विषय पर आयोजित त्रिदिवसीय वार्ता में आप ने दूसरे दिन गोष्ठी की अध्यक्षता की तथा अपने विचार प्रस्तुत किये। अपभ्रंश शब्दकोश पर आप अपना कार्य तीव्र गति से आगे बढ़ा रहे हैं।

डॉ० परमेष्ठीदास जैन, खुरई : 'आचारांग सूत्र का समालोचनात्मक अध्ययन' विषय पर आप को पी-एच० डी० प्राप्त हुई है। आगे 'षट्खण्डागम में उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री' पर आप कार्य कर रहे हैं।

डॉ० भागचन्द्र जैन, नागपुर : 'बौद्ध साहित्य में जैन धर्म' विषय पर सीलोन से पी-एच० डी० किया है। शोध और सम्पादन कार्य में विशेष उपयोग लगाया।

प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन, सीहोर : जैन गणित पर आप का विशेष अध्ययन है। त्रिलोकसार के गणित का अध्ययन तैयार कर रहे हैं।

डॉ० वीरेन्द्रकुमार जैन, गुना : 'धनपाल कृत तिलकमंजरी का समालोचनात्मक अध्ययन' विषय पर विक्रम विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० प्राप्त हुई है। जैन धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों पर कार्य करने की योजना है।

डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन, उज्जैन : 'जैन आगम शास्त्र के अनुसार मानव व्यक्तित्व का विकास' विषय पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० प्राप्त हुई थी। अनुसन्धान के क्षेत्र में अपने अनुभवों के आधार पर विशेष वार्ता दी।

श्री कन्छेदीलाल जैन, रायपुर : 'रूपककार हस्तिमल्ल तथा उन का नाट्य

६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य' विषय पर मगध विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए शोध कार्य कर रहे हैं। शिविर में शोध सामग्री को अन्तिम रूप देने का प्रयत्न करते रहे। प्रवन्ध यथाशीघ्र तैयार होने की आशा है।

श्री कस्तूरचन्द जैन, लामटा : 'मध्यप्रदेश के प्राचीन जैन अभिलेखों का अध्ययन' विषय पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए शोध कार्य कर रहे हैं।

श्री गोपीलाल अमर, सागर : मध्यप्रदेश में जैन धर्म का विकास (१२०० ई० तक) विषय पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए शोधकार्य कर रहे हैं। प्रवन्ध शीघ्र तैयार होने की आशा है।

श्री देवकुमार जैन, रायपुर : 'जोइन्दु और कवीर की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर रायपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए कार्य प्रारम्भ किया है। प्रवन्ध की रूपरेखा को स्वरूप देने तथा शोधकार्य को आगे वढ़ाने की दिशा में कार्य किया।

श्री प्रकाशचन्द्र सिंघई, सागर : 'दक्षिणी वुन्देलखण्ड की जैन कला का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए शोध कार्य कर रहे हैं। जैन कला के प्रेरक तत्त्व विषय पर अध्ययन किया।

श्री प्रेमचन्द सुमन, बीकानेर : 'उद्योतन सूरिकृत प्राकृत कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर शोधकार्य करने के लिए रूपरेखा वनायी तथा जैन साहित्य और संस्कृति विषयक प्रकाशित निवन्धों को पुस्तक रूप में नियोजित करने की योजना वनायी।

श्री पूर्णचन्द्र जैन, जैसीनगर, सागर : 'प्राचीन जैन गृहस्थाचार का सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए रूपरेखा वनायी तथा शोध कार्य को आगे वढ़ाने के लिए दिशा निर्देश प्राप्त किया।

श्री भागचन्द्र 'भागेन्दु', सीहोर : 'देवगढ़ की जैन कला का सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर शोध प्रवन्ध तैयार है, जिसे यथाशीघ्र सागर विश्वविद्यालय को परीक्षार्थ प्रस्तुत करेंगे।

श्री सुमतकुमार जैन, सासनी, अलीगढ़ : 'सेट थ्योरिक एप्रोच इन गोम्मट-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सार' विषय पर शोध कार्य करने की रूपरेखा बनायी तथा प्रारम्भिक सामग्री संकलन आदि कार्य किया।

श्रीमती सुनीता जैन, वाराणसी : 'जैन कवियों का हिन्दी पद साहित्य' विषय पर शोधकार्य करने के लिए प्रारम्भिक तैयारी की।

श्री हुकमचन्द नायक, मऊरानीपुर (झांसी) : 'जैन पुराणों की कथाओं का समालोचनात्मक अध्ययन' विषय शोधकार्य के लिए चुना तथा प्रारम्भिक दिशा निर्देश प्राप्त किया।

सम्पादन सहयोग

पं० दयाचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री, पं० माणिकचन्द्र जी न्याय-काव्यतीर्थ, तथा पं० दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य सागर ने सम्पादन कार्य में सहयोग दिया तथा अन्य सामूहिक कार्यक्रमों में शामिल हुए।

अन्य सहयोग

परिचर्चा, विचार-गोष्ठी तथा इंटरव्यूज़ के कार्यक्रमों में निम्नलिखित विद्वानों के कार्यक्रम सम्पन्न हुए—

पं० मुन्नालाल समगौरया, सागर; श्री भागचन्द्र इटोरिया, दमोह; डॉ० रामजी उपाध्याय, सागर विश्वविद्यालय; डॉ० नेमिचन्द्र जैन, इन्दौर; प्रो० कृष्ण-दत्त वाजपेयी, सागर विश्वविद्यालय, पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य, बीना।

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, बम्बई; श्री जिनेन्द्र वर्णी रोहतक; श्री ज्ञान भारिल्ल बीकानेर तथा पं० के. भुजबली शास्त्री, धारवाड के विशेष आलेख प्राप्त हुए।

१. क्षुल्लक दयासागर जी के टेप प्रवचन सिंघई जीवेन्द्रकुमार जैन से प्राप्त हुए, २. क्षुल्लक चिदानन्द जी, ३. ब्र० राजाराम जी, ४. ब्र० डालचन्द्र जी के महत्त्वपूर्ण विचार सुनने का अवसर मिला।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा कवि-गोष्ठियों के अन्तर्गत इन का विशेष सहयोग रहा।

श्री नीरज जैन, सतना; श्री सत्यनारायण तिवारी, सागर; श्री श्रवण कुमार 'नवेन्दु' कोतमा; श्री जयकुमार 'जलज', सीहोर; प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर विश्वविद्यालय; डॉ० रमेशचन्द्र जैन, सागर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामूहिक कार्यक्रम

शिविर के रात्रिकालीन कार्यक्रमों के अन्तर्गत शिविर में सम्मिलित स्नातकों की विशेष वार्ताएँ आयोजित थीं—

१. अध्ययन-अनुसन्धान के सामूहिक प्रयत्न : डॉ गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी।
२. अनुसन्धान कार्य : समस्याएँ और समाधान : डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन।
३. प्राचीन अध्ययन पद्धति : डॉ० परमेष्ठीदास जैन, खुरई।
४. जैनाचार्यों की गणित विषयक मान्यताएँ और आधुनिक गणित : प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन, सीहोर।
५. युग के सन्दर्भ में सामाजिक दायित्वबोध : डॉ० वीरेन्द्रकुमार, गुना तथा डॉ० भागचन्द्र जैन, नागपुर।
६. हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ : पं० गोपीलाल अमर, सागर।
७. परिग्रह परिमाणाणुव्रत और समाजवाद : प्रो० पूर्णचन्द्र 'पूर्णेन्दु', जैसीनगर, सागर।
८. गणित विषयक प्राचीन मान्यताएँ और आधुनिक उपलब्धियाँ : प्रो० सुमतकुमार जैन, सासनी।
९. लोककथाओं का सांस्कृतिक महत्त्व : प्रो० प्रेमसुमन जैन, बीकानेर।
१०. सांस्कृतिक प्रगति और नारी : श्रीमती सुनीता जैन, वाराणसी।
११. नित्यमह पूजन : स्नातकों द्वारा बाहुबलि स्वामी की सामूहिक पूजा।

दो महत्त्वपूर्ण निर्णय

१. जैनालाजिकल रिसर्च सोसायटी : प्राकृत सेमिनार कोल्हापुर, जैन साहित्य संगोष्ठी वाराणसी तथा जैन विद्याओं पर आयोजित अन्य सेमिनार सम्मेलनों आदि को सन्दर्भ में रखते हुए शिविर में सम्मिलित स्नातकों ने निश्चय किया कि भारत तथा विदेशों में मानविकी तथा विज्ञान (ह्युमैनिटीज़ एण्ड-सायंसेज) से सम्बन्धित जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुसन्धान में सक्रिय रूप से रत तथा रुचि रखने वाले विद्वानों, शोधार्थियों और संस्थाओं में पारस्परिक सम्पर्क-सहयोग एवं शोध प्रवृत्तियों को गति देने के उद्देश्य से 'जैनालॉजिकल रिसर्च सोसायटी' का गठन किया जाये जिस का शुभारम्भ समारोह ऑल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इण्डिया ओरिएन्टल कॉन्फ़रेंस के रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर आगामी अक्तूवर में जादवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ता में किया जाये तथा सोसायटी का जर्नल भी प्रकाशित किया जाये।

२. वर्णी इंस्टीट्यूट ऑव् इंडालॉजी : सागर नगर में जैन विद्याओं के उच्च-स्तरीय अध्ययन के लिए विश्वविद्यालय में वर्णी चेयर अथवा वर्णी शोधसंस्थान की स्थापना के विषय में स्नातक शिविर का अभिमत है कि इस के वर्तमान कार्य संचालन के लिए पाँच व्यक्तियों की एक सम्पर्क समिति वनायी जाये, जिस में विश्वविद्यालय सागर के कुलपति, एक वरिष्ठ प्रोफ़ेसर, शहर के दो प्रभावशाली व्यक्ति तथा वाहर से जैन विद्याओं का एक प्रमुख विद्वान् रहे।

समापन समारोह

२० तथा २१ जून को द्विदिवसीय समापन समारोह आयोजित था। प्रथम दिन शिविर की उपलब्धियों का समाकलन और दूसरे दिन पूर्णाहुति। प्रथम दिन के विशेष अतिथि थे मध्यप्रदेश के राज्य गृहमन्त्री माननीय व्रजकिशोर पटेरिया तथा अध्यक्ष थे जैन समाज भूषण सेठ भगवानदास जैन। स्व० गणेशप्रसाद जी वर्णी की भव्य मूर्ति के पाद मूल में आयोजित इस समारोह में शिविर में सम्मिलित स्नातकों के अतिरिक्त सागर विश्वविद्यालय तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं के प्राध्यापक और शिक्षाविद्, सम्भ्रान्त नागरिक तथा प्रशासनिक अधिकारी वड़ी संख्या में शामिल हुए।

शिविर की उपलब्धियों का परिचय देते हुए डॉ० गोकुलचन्द्र जैन ने सविवरण वताया कि पिछले वीस दिनों में स्नातकों ने जो–कितना कार्य किया है, वह न केवल उच्चकोटि का है प्रत्युत परिमाण में भी इतना है कि सम्भवतया एक वर्ष में भी सम्भव न होता। इस शिविर के आयोजन से स्नातकों को जो दिशानिर्देश, उत्साह और प्रेरणा मिली है उस से निश्चय ही शोध कार्य को गति मिलेगी।

डॉ० जैन ने वताया कि यह शिविर स्नातकों का एक साहसिक प्रयत्न है। इस का सम्पूर्ण व्यय स्नातकों ने स्वयं वहन किया है। यदि विश्वविद्यालय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा अन्य कोई संस्था यह आयोजन करती तो निश्चय ही एक बड़ी राशि व्यय होती।

सागर विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी ने अपने वक्तव्य में कहा कि इस शिविर की गतिविधियों से मैं प्रारम्भ से अवगत रहा हूँ। जितना सम्भव हो सका इस के कार्यक्रमों में शामिल हुआ। इस की महत्ता को मैं समझता हूँ। वास्तव में यह कल्पना करना भी कठिन था कि स्नातक अपने बलबूते पर इतना बड़ा आयोजन कर लेंगे। शिविर में जो कार्य हुआ है उस से अवश्य ही शोध-कार्य को गति मिलेगी।

शिविर में सम्मिलित स्नातकों की ओर से प्रो० भागचन्द्र 'भागेन्दु' ने कृतज्ञता अभिव्यक्त की और कहा—हम सभी इस शिविर से बहुत ही लाभान्वित हुए हैं और भविष्य में कार्य करने की भी प्रेरणा मिली है। निःसन्देह अनुसन्धान के क्षेत्र में यह शिविर एक ऐतिहासिक उपलब्धि माना जायेगा।

प्रमुख अतिथि माननीय ब्रजकिशोर पटेरिया ने कहा—"मैं बड़े संकोच के साथ विद्वानों के इस आयोजन में शामिल हुआ था किन्तु मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि यहाँ आ कर बहुत कुछ जानने-समझने को मिला। सागर में जैन विद्याओं के अध्ययन के लिए वर्णी संस्थान आदि की कोई योजना बने तो शासन की ओर से मैं यथाशक्य सहयोग दिलाने का आश्वासन देता हूँ।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए सेठ भगवानदास जी ने कहा कि सागर नगर में और वर्णी जी के इस विद्यालय में शिविर के इस आयोजन से हम गौरवान्वित अनुभव करते हैं और इस के लिए आयोजकों का आभार व्यक्त करते हैं।

निःसन्देह इस प्रकार के शिविर की परिकल्पना उच्चस्तरीय अध्ययन के क्षेत्र में एक विशिष्ट और अद्भुत थी तथा इस से जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुशीलन की दिशा में सामूहिक प्रयत्नों की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश कोश : आवश्यक या अनावश्यक

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

सामान्यतः किसी भी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस के शब्द-कोश से परिचित होना आवश्यक है। सर्वप्रथम शब्दों की परिचिति तथा अर्थवत्ता का ज्ञान कोश से होता है। एक शब्द के अनेक तथा भिन्न अर्थों की जानकारी भी हमें कोश से मिलती है। जीवित बोली तथा भाषा का ज्ञान हम शब्द-प्रयोग, प्रसग तथा सन्दर्भ आदि के अनुकूल प्रयोक्ता की विविध भाव-भंगिमाओं एवं संस्कारवश सहज ही अर्जित कर लेते हैं, किन्तु अतीत की भाषाओं का ज्ञान बिना शब्दकोश के सम्भव नहीं है। ऐसी किसी भी लिखित भाषा का ज्ञान जो आज बोल-चाल की भाषा न हो बिना शब्द-कोश के समझना और समझाना बहुत ही कठिन है। केवल व्याकरण के आधार पर सीखी हुई भाषा बिना शब्द-कोश की परिचिति के अपरिचित-सी ही रहती है। अच्छे से अच्छा संस्कृत का विद्वान् भी जब मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का अध्ययन करता है तब उसे पुस्तक हाथ में ले कर कई बार पलटनी पड़ती है प्रसंगतः अर्थोपपत्ति— निश्चित करने हेतु विवश हो कई बार शब्द-कोशों को टटोलना पड़ता है या उस भाषा के विद्वान् से विमर्श लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कोश की महत्ता का स्पष्ट पता चल जाता है। अतएव कोश के महत्त्व एवं उस की उपादेयता से इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रत्येक स्थिति में भाषा-विशेषज्ञों, साहित्य-प्रेमियों तथा इतिहास-संस्कृति आदि विषयों के अधिकारी विद्वानों के लिए भी कोश अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुए हैं।

अपभ्रंश भाषा का आज तक कोई कोश प्रकाशित नहीं हो सका, यह एक सखेद चिन्तनीय विषय है। और इस से भी अधिक चिन्ता और दुःख की बात है कि इस भाषा के परम अधिकारी विद्वान् कोश की महत्ता को टालते रहे हैं। क्योंकि उन की दृष्टि में सम्भवतः प्राकृत भाषा से भिन्न अपभ्रंश का शब्द-समूह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं हो सकता। अधिकतर अपभ्रंश भाषा की शब्द-सम्पत्ति प्राकृत के शब्द-भण्डार से समृद्ध है इस लिए अलग से शब्द-कोश की क्या आवश्यकता है ? प्राकृत-भाषा के कई शब्द-कोश प्रकाशित हो चुके हैं, जिन में अधिकतर अपभ्रंश शब्द मिलते हैं। प्राकृत के अन्य शब्दकोशों की अपेक्षा "पाइअ-सद्द-महण्णवो" (प्राकृत-शब्द-महार्णव) में अपभ्रंश शब्द अधिक संख्या में मिलते हैं। इस कोश के द्वितीय संस्करण (१९६३) में विशेष रूप से पं० दलसुखभाई मालवणिया के योग से भविसयत्तकहा आदि अपभ्रंश ग्रन्थों के शब्दों को सम्मिलित किया गया है। इस से प्राकृत तथा अपभ्रंश दोनों ही भाषाओं के शब्दकोश के रूप में इस का प्रचलन हो गया है।

स्व० पंडित हरगोविन्ददास त्रिकमचंद सेठ द्वारा सम्पादित "पाइअ सद्द-महण्णव" में अपभ्रंश के बहुत ही कम शब्द मिलते हैं। इस कोश में अधिकतर प्राकृत के वे ही शब्द मिलते हैं जो परम्परागत प्राकृत से अपभ्रंश में आगत हैं। ऐसे शब्दों की संख्या पचास प्रतिशत हो सकती है। इन में भी कुछ शब्द ऐसे हैं जो भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द निम्न-लिखित हैं :—

प्राकृत से भिन्नार्थक अपभ्रंश शब्द

पुष्पदन्त के महापुराण में "णाउ" शब्द स्नायु अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (णाउ नहारु—स्नायु, म० पु० ४. ७. ८), किन्तु पाइअ० में यह अर्थ नहीं मिलता। उस में "णाउ" का अर्थ जानकार (ज्ञातृ) है। ऐसे अन्य शब्दों की सूची इस प्रकार है—

प्राकृत शब्द – अर्थ	अपभ्रंश शब्दार्थ
गोर (गौर)–गोरा रंग	गोरउ (गौर)–ज्ञानरत (म० पु० ४. ६. १)
तलप्प अक (तप्)–तपना, गरम होना	तलप्प–करप्रहारम् (म० पु० टिप्पणी ४.११. ७) तलप्पंत–उछल कर आते हुए। (वीर कवि : जंबू०च० ५.१४. ६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत शब्द – अर्थ	अपभ्रंश शब्दार्थ
उत्थल्ल–आच्छादन करना (?), उछलना	उत्थल्ल–उत्पाटित (टिप्पणी म० पु० १४.१०.१)
अल्लय–आर्द्रक, परिचित, ज्ञात	अल्लय–हाथ का मैल कर-मलं–(टिप्पणी म० पु० ३१.२४.४)
ढक्करि–अद्भुत	ढक्करिवन्तय–हठोक्ति युक्त (प० च० १.१०.१)
चक्कि–चक्र वाला, चक्रवर्ती सम्राट्, तेली, कुम्हार	चक्की–चक्रवाकी (प० च० १८.११.४)
उच्चोल–खेद, उद्वेग; नीवी	उच्चोलि–उत्संग,गोद (प०च० ९.३.१)

तेण वि सरहसेण सव्वङ्गिउ एन्तउ सामीरणि आलिङ्गिउ ।
चुम्वेवि उच्चोलिहिं वइसारिउ वारवार पुणु साहुक्कारिउ ॥
(पउमचरिउ, २०.३.३)

अवलुअ–पतवार	
अवलुआ–क्रोध	अवलुय–चित्तखेद, (टिप्पणी प० च० २०.११.४)
लाहव–लाघव	लाहउ, लाहव–लाभ (प० च० १७.६.९, २०.२.१)
पर–अन्य, भिन्न	परए–प्रभाते (टिप्पणी प०च० ७.१३.१)
भुंमल–मद्य-पात्र	भुम्मल–भोली-भाली (प०च० १४.२.९) (गुजराती भम्मर = भोली)
खोल्ल–गह्वर	खोल्ल–अतीव गाढ (टिप्पणी प०च० १३.४.८)
खेरि–नाश; खेद; उत्कण्ठा	खेरि–वैर (प० च० १३.१०.९)

यहाँ कुछ ऐसे शब्दों की सूची दी जा रही है जो प्राकृत कोशों में नहीं मिलते ।

छिव्वर – चपटी (प० च० १.२.११), चुम्मल– शेखर (प० च० १७-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२.२), जालोलि – ज्वालावली (प० च० ८.२.६), णियासण – निवसन (प० च० ६.१४.४) णियल – निगड (प० च० १.५.६), णियच्छिय– निअच्छ दृश् (प० च० १९.९.९) ढोर– पशु (प० च० २.७.३), णइसप्प– नैसर्प (प० च० ४.६.६), जिणाल – जिनालय (प० च० ६.२.५), डोह– क्षोभ (प० च० २.१३.४), लंजिया– दासी (प० च० २३.४.२), रसय– रसक, मद्यभाजन, (प० च० २६.७.६), सरुंजा—वाद्य विशेष (प० च० ४०. १७.४), सोयवत्ति – मिष्टान्न विशेष (प० च० ५०.११.६) मुसुसूर– चूर्ण (प० च० ३८.६.५), टिविल– ढुलकिया, छोटी ढोलक (प० च० २४.२.२ और भी इस तरह के कई शब्द "पउमचरिउ" (स्वयम्भू) में हैं जो पाइअसद्द महण्णव में नहीं हैं। इसी प्रकार के शब्द पुष्पदन्त विरचित महापुराण में निम्न-लिखित हैं—

वोसट्ठ– वीभत्स (म० पु० ७.१२.८), अलियल्लि– व्याघ्र (म० पु० १५.१३.३), ढेक्क – दहाड़ (म० पु० ३.५.१०), तंडउ – टोली, जत्था (म० पु० १६.२२.८), वियाल–विकाल, सन्ध्या। रंगणडा (म० पु० ७.२०. ५), जोक्खइ (म० पु० ४.५.५), गिल्ल – गिल (म० पु० ४.७.९), झुंबुक्क– म० पु० (४.९.९), मम्म (म० पु० ४.१०.१) आदि।

सुदंसणचरिउ के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

मंट (सु० च० ६.११), फरिय (सु० च० ५.२१), गोल्ली (सु० च० ४. ६), टरटर (सु० च० ८.१९) खुट्ठ (सु० च० ६.११), घवघव (सु० च० ३.७), ममण (सु० च० ३.७), थडा (सु० च० २.१३), झडा (सु० च० २.१३), इत्यादि।

इसी प्रकार अपभ्रंश के अन्य कई हस्तलिखित काव्य ग्रन्थों में ऐसे शब्द मिलते हैं जो न तो "देशी नाममाला" में मिलते हैं और न किसी प्राकृत शब्द-कोश में। ऐसे लगभग तीन सहस्र, शब्दों का संकलन मैं कर चुका हूँ। इस के साथ ही अपभ्रंश-कोशों में मिलने वाले तथा प्रयुक्त सभी प्रकार के शब्दों का संकलन कर रहा हूँ। यह विद्वानों के विचार करने की बात है कि अपभ्रंश कोश आवश्यक है या अनावश्यक।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन साहित्य : आधुनिक प्रस्तुति
श्री ज्ञान भारिल्ल से एक इण्टर्व्यू

●

प्रो० प्रेम सुमन जैन

[श्री ज्ञान भारिल्ल ने प्राचीन भारतीय कथा साहित्य को आधार बनाकर लगभग आधा दर्जन हिन्दी उपन्यास लिखे हैं, जो प्राचीन साहित्य को आधुनिक प्रस्तुति की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसी सन्दर्भ में लिया गया एक विशेष इण्टर्व्यू।]

सुबह जान-बूझकर निर्धारित समय से कुछ लेट पहुँचा। डर था, कहीं अभी तक श्री ज्ञान भारिल्ल सो न रहे हों। किन्तु वे लुंगी और वनियान पहने आँगन में टहल रहे थे। मुझे देखते ही मुसकराते हुए बैठक में आ गये। मुझे बड़ी झिझक हो रही थी कैसे बात शुरू करूँ। पूछने के लिए यद्यपि प्रश्न मेरे पास लिखे थे किन्तु शायद यह औपचारिकता अपरिचित लोगों के बीच ही ठीक होती होगी।

मैंने कहा—आज सवेरे-सवेरे आप का एक इण्टरव्यू लेने आया हूँ—आप के पौराणिक उपन्यासों के सन्दर्भ में।

वे मुसकराये। 'अरे मित्रों के बीच क्या इण्टरव्यू ? आप तो सब जानते ही हैं।' फिर बोले—'अच्छा आये हैं तो पूछिए।'

प्राचीन-साहित्य की पृष्ठभूमि पर उपन्यास लिखने की ओर आप की रुचि कैसे जागरित हुई ?

उन्होंने कुरसी की पीठ पर टिक कर आँखें बन्द कर लीं। बोले—'मेरा जन्म ही उस वातावरण में हुआ, जहाँ प्राचीन-साहित्य के अध्ययन-अनुसन्धान को महत्त्व दिया जाता रहा है। आप मेरे पिता श्री पं० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल से तो परिचित होंगे। जैन-साहित्य की सेवा में उन्होंने अपना जीवन लगा दिया। जब मैं कुछ लिखने की ओर झुका और पिता जी को पता चला तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने मुझ से कहा—'तुम प्राचीन कथाओं को आधुनिक रूप में लिखो तो लेखन के साथ-साथ साहित्य की भी कुछ सेवा हो जायेगी।' मेरी स्वीकृति पाकर उन्होंने मुझे 'तरंगवती' एवं 'कुवलयमाला' की कथा से अवगत कराया। तरंगवती मैंने लिख कर उन्हें दिखायी तो वे बहुत प्रसन्न हुए। और बस फिर क्रम चल पड़ा। अतः प्राचीन-साहित्य के लेखन की ओर मेरी रुचि पैदा करने में पूज्य पिता जी का ही हाथ था। फिर बाद में मुझे भी इस में रस आने लगा।'

अब तक आप ने इस प्रकार के कितने उपन्यास लिखे हैं ?

वे गिनाने लगे—'(१) तरंगवती (२) साक्षी है क्षिप्रा (३) भटकते भटकते (४) शाह और शिल्पी (५) कहाँ थे तुम और (६) आगम कथाएँ।'

मैं आगे का प्रश्न पूछने जा रहा था तभी वे भीतर चले गये। मुझे उन के अध्ययनकक्ष के निरीक्षण का अवसर मिल गया। आधुनिक साहित्य की अनेक कृतियों के साथ वहाँ जैन-साहित्य की कई किताबें थीं। टेबिल पर आबू के जैन मन्दिर की एक कलाकृति का फोटोग्राफ़ सजा हुआ था। वे चाय के साथ वापस आकर कुरसी पर बैठ गये। बिना दूध की चाय का कप स्वयं उठा कर मुझे दूधवाली चाय पीने को कहा। चाय पीते ही मैं ने आगे का प्रश्न किया—

इस समय आप क्या लिख रहे हैं और आगे क्या योजना है ?

'अभी मेरे पास (१) वस्तुपाल पर लिखा हुआ एक उपन्यास (२) सूली और सिंहासन (सुदर्शन सेठ के चरित्र पर लिखा हुआ उपन्यास) (३) आगम कथाएँ २ रा भाग की पाण्डुलिपि तैयार पड़ी हैं। प्रकाशनार्थ भेजने वाला हूँ।'!

'आगामी लेखन की मेरे पास कोई योजना नहीं है। अध्ययन करते समय कोई कथानक आ जाता है तो उसी पर लिखना शुरू कर देता हूँ। फिलहाल ऋषभदेव, भरत और बाहुबली के चरित्रों पर उपन्यास लिखने की सोच रहा हूँ। जल्दी ही लिखूँगा। आगम कथाएँ प्रथम २१ भागों में लिखने की योजना बनायी थी। अभी तक दो भाग लिखे जा चुके हैं। आगे कुछ कह नहीं सकता। सब समय और सुविधा पर निर्भर है।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन कथाओं को आधुनिक औपन्यासिक स्वरूप में ढालते हुए आप को कुछ विशेष अनुभव हुए होंगे ?

'अनुभव तो क्या, कुछ कठिनाइयाँ अवश्य होती हैं। प्राचीन कथाएँ धार्मिक-वर्णनों से अधिक बोझिल होती हैं। उस सब को इस तरह उपन्यास में बचाना पड़ता है कि कथा की मूल भावना में कोई अन्तर न आ पाये और पाठक भी नीरस न हो। कभी कुछ ऐसे सहयोगी पात्र भी स्वयं गढ़ने पड़ते हैं, जो औपन्यासिक रूप देने के लिए आवश्यक होते हैं।'

क्या यह सच है कि प्राचीन-साहित्य में लालित्य और सौन्दर्यबोध चरम विकास को प्राप्त हुआ है ?

'निश्चित रूप से यह बात सत्य है। प्राचीन कथाकृतियों के वर्णनों में जो सूक्ष्मता और विविधता प्राप्त होती है, बड़ी कठिनाई से आज के साहित्य में उस के दर्शन होते हैं।'

क्या वह सब का सब उपन्यास में उतारा जा सकता है ?

'यह सम्भव नहीं है। क्योंकि एक तो आज का लेखक उतना सूक्ष्मद्रष्टा और परिपक्व अनुभव वाला नहीं हो पाता जितने प्राचीन साहित्यकार होते थे। दूसरे, बदलते परिवेश और रुचि को भी ध्यान में रखते हुए वह सब कृति में भरना आवश्यक नहीं लगता।'

आप को अपने लिखे उपन्यासों में सब से प्रिय कौन लगता है ?

'यह एक टेढ़ा प्रश्न है। रचनाकार इस का उत्तर देने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है। वैसे मुझे 'साक्षी है क्षिप्रा' अधिक सशक्त और प्रिय लगती है। क्योंकि इस में मैं प्राचीन कथानक से बँधा नहीं रहा हूँ। इसलिए अपनी कल्पना द्वारा छोटे से कथानक को अधिक विस्तार दे सका हूँ। आधुनिक परिवेश में भी इस का कथानक प्राचीन नहीं लगता।'

'साक्षी है क्षिप्रा' में कृतिकार बहुत प्रबुद्ध है और इसलिए वह व्यंजित अर्थ को भी कभी-कभी अभिधेय बनाता चलता है। आप का क्या ख़याल है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'यह विल्कुल ठीक है। जहाँ कहीं भी मैंने ऐसा किया है, पाठक को प्रभावित करने के लिए। यद्यपि आज के लेखन में प्रतीक अधिक प्रयुक्त हो रहे हैं किन्तु मेरे विचार से ऐतिहासिक कथानकों पर लिखे जाने वाले उपन्यासों में इस से काम नहीं चल पाता। पाठक के समक्ष व्यंजित अर्थ को भी स्पष्ट करना होता है।'

मुझे 'तरंगवती' कृति बड़ी ही प्रिय और मोहक लगी। इस के विषय में आप की क्या धारणा है?

'वह कथा ही ऐसी है। उस में मेरा कुछ नहीं है। उस का सुन्दर वन पाना आचार्य पादलिप्त की ही कृपा है। कथानक की संरचना ही कुछ इस प्रकार की है कि पाठक को मोह लेती है। आप को प्रिय लगी। धन्यवाद।'

'कहाँ हो तुम' भटकते-भटकते का परिवर्द्धन मात्र है? या आप ने इस में कुछ शिल्प गत प्रयोग भी किये हैं?

'भटकते-भटकते में मैंने कुवलयमालाकहा को संक्षिप्त रूप में लिखा था। बाद में मुझे वह कुछ नीरस-सी प्रतीत हुई जब कि कथानक इतना सुन्दर और विशाल है। अतः मैंने उसे दुबारा लिखा है। कुछ अच्छा तो अवश्य बन पड़ा है। शैली भी परिवर्तित हुई है।'

आप ने ये उपन्यास प्राचीन मूल कृतियों का स्वयं अध्ययन कर के लिखे हैं? या कथा जानने के लिए केवल अनुवाद पढ़ कर काम चलाया है?

'आप तो मेरी परीक्षा ले रहे हैं। लेकिन यह बहुत उपयोगी प्रश्न है। प्रामाणिकता की दृष्टि से और मूल लेखक के साथ न्याय करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि रचनाएँ मूल रूप में पढ़ी जायें। लेकिन यह सच है, मैंने नहीं पढ़ीं। गुजराती अनुवाद को पढ़ कर मैंने उपन्यास लिखे हैं। लेकिन इस से कई ऐतिहासिक भूलें भी हुई हैं। जैसा कि आप ने 'कहाँ थे तुम' को पढ़ कर मेरा ध्यान उन की ओर आकर्षित किया था।'

आप के उपन्यासों पर पाठकों की क्या प्रतिक्रियाएँ आप को मिलीं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'पहली बात मेरे उपन्यासों के प्रकाशक राजस्थान के ही हैं। उन का छोटा दायरा है। अतः वे उन का प्रचार-प्रसार भी नहीं कर पाते। इसलिए पाठक-वर्ग भी अधिक नहीं है। लेकिन जिन पाठकों से मेरा सम्बन्ध हुआ है उन्हें मेरे उपन्यास रोचक लगे हैं। इस में मेरी रचना और कथानक दोनों का हाथ है। 'साक्षी है क्षिप्रा' तो अजमेर के एक स्कूल के पाठ्यक्रम में भी स्वीकृत है।'

प्राचीन कथाओं के आधुनिकीकरण के क्षेत्र में क्या सामूहिक-प्रयत्न फलदायक हो सकता है? इस के लिए आप किसी तरह की व्यवस्था को आवश्यक मानते हैं?

'निश्चित रूप से सामूहिक-प्रयत्न फलदायक होंगे। मुझे अभी यही मालूम नहीं कि मेरे अतिरिक्त और भी कोई इस क्षेत्र में कार्य कर रहा है या नहीं। इस से कार्य बँट जायेगा और पुनरावृत्ति नहीं होगी।

'प्राचीन कथाओं पर लिखने के लिए प्राचीन-साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। लेखकों के लिए यह तभी सम्भव है जब उन को प्राचीन-साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध कराये जायें। मुझे ही देखिए, कुवलयमाला पर दो बार लिखने के उपरान्त भी मैं प्राकृत की कुवलयमाला कहा के दर्शन नहीं कर सका। खैर; इसकी तो मुझे सूचना ही नहीं थी। लेकिन अधिकतर सूचना रहने पर भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हम नहीं खरीद पाते। इस क्षेत्र में कार्य करनेवाले विद्वानों को यदि सम्बन्धित ग्रन्थ उपलब्ध कराये जायें तो वे अपने लेखन को योजनाबद्ध करके आगे बढ़ा सकते हैं। उन्हें कथानक ढूँढ़ने के लिए ग्रन्थ खोजने में समय बर्बाद नहीं करना पड़ेगा।

'प्राचीन कथानकों पर उपन्यास लिखे जाने भर से कुछ न होगा। उन के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार की भी व्यवस्था होना जरूरी है। इस से लेखक को बल मिलता है। कोई एक संस्था ऐसा कार्य कर रही हो, मुझे ज्ञात नहीं। करना चाहिए।'

"अभी और भी प्रश्न हैं क्या?" कह कर थूकने के लिए बाहर चले गये। मैंने अपनी डायरी बन्द कर दी। वे आये देखकर बड़े खुश हुए। बोले—"हाँ अब छुट्टी हुई। अब कुछ बातें करो।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

BOOKS ON JAINISM

DOCTRINE OF THE JAINAS : W. Schubring		30.00
JAIN ETHICS : Dr. Dayanand Bhargava		20.00
JAIN CULTURE : M. L. Mehta		10.00
JAIN SUTRAS : 2 Vols. Eng. Trans. H. Jacobi		40.00
PRAMANANAYA TATTVALOKALAMKARA :	Eng. Trans. H. S. Bhattacharya	20.00
REALS IN THE JAINA METAPHYSICS :	H. S. Bhattacharya	15.00
दर्शन और चिन्तन : सुखलाल संघवी		7.00
जैन आचार : मोहनलाल मेहता		5.00
जैन धर्म का प्राण : पं० सुखलाल		2.00
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास : ४ भाग : मोहनलाल मेहता		60.00

ASK FOR ANY BOOK ON JAINISM

MOTILAL BANARSIDASS

BUNGALOW ROAD :: JAWAHARNAGAR ::

DELHI-7

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय विद्या के तीन विशिष्ट ग्रन्थ

पं० अमृतलाल शास्त्री

गद्यचिन्तामणिः

विपुल संस्कृत वाङ्मय में काव्य साहित्य का अपना स्वतन्त्र स्थान है। पद्य-शैली की अपेक्षा गद्यशैली में लिखे गये काव्यों की संख्या कम है। उपलब्ध गद्य-काव्यों में वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरितम्, दशकुमारचरितम्, गद्यचिन्तामणिः और तिलकमञ्जरी विद्वत्संसार में प्रसिद्ध हैं।

गद्यचिन्तामणि की कथावस्तु पौराणिक और हर्षचरितम् की ऐतिहासिक है, शेष सभी की कल्पित।

वादीभसिंह सूरि की श्रेष्ठकृति—गद्यचिन्तामणि का नायक जीवन्धर है, जो भगवान् महावीर के समय में हुआ। इस के उदात्तचरित ने अनेक आचार्यों और कवियों को प्रभावित किया है। यही कारण है कि इसी चरित को आचार्य गुणभद्र, हरिचन्द्र और शुभचन्द्र ने संस्कृत के माध्यम से, पुष्पदन्त और रइधू ने अपभ्रंश के माध्यम से, नथमल ने हिन्दी के माध्यम से, तिरुतक्क ने तमिल के माध्यम से और भास्कर, तेरकनम्बि बोम्मरस, कोटीश्वर तथा ब्रह्मकवि ने कन्नड़ भाषा के माध्यम से अपनी कृतियों का प्रतिपाद्य विषय बनाया।

अन्य कवियों की अपेक्षा वादीभसिंह सूरि को, जिन का गृहस्थ अवस्था का नाम ओडयदेव है, यह चरित अत्यन्त प्रिय रहा। इसी लिए उन्होंने इसी चरित को आधार बनाकर प्रस्तुत गद्यकाव्य के अतिरिक्त एक पद्यात्मक काव्य—क्षत्र-चूड़ामणि का भी प्रणयन किया।

ग्यारह लम्भों में समाप्त गद्यचिन्तामणि की कथावस्तु का संक्षिप्ततमसार इस प्रकार है—हेमाङ्गद देश का राजा सत्यन्धर है। इस की राजधानी का नाम राजपुरी है। इस को अनेक रानियों में विजया प्रधान थी। इस की अनुपम रूपसंपदा ने सत्यन्धर को इतना मुग्ध कर दिया कि वह निरन्तर उसी के साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रह कर समय विताने लगा। राज्य का संचालन उस ने अपने मन्त्री काष्ठाङ्गार के अधीन कर दिया।

सत्यन्धर को अहर्निश भोगसागर में निमग्न देख कर काष्ठाङ्गार ने उस के राज्य को हड़पने का निश्चय किया। मन्त्रिमण्डल की वैठक में उस ने कहा—'इधर कई दिनों से एक देव स्वप्न दे रहा है कि सत्यन्धर को मार डालना चाहिए, अन्यथा प्रजा का संहार निकट है'। यह सुनते ही धर्मदत्त आदि कुछ मन्त्रियों ने अपना अभिमत प्रकट किया कि 'राजा वड़ा होता है न कि देव, अतः स्वप्न के आधार पर ऐसे कुकृत्य की कल्पना करना भी अनुचित है'। काष्ठाङ्गार के साले मथन ने उन का विरोध किया और अन्य मन्त्री परिस्थिति के दास बन कर मौन रह गये। समय पा कर काष्ठाङ्गार ने विरोध प्रकट करने वाले मन्त्रियों को मौत के घाट उतरवा दिया और अपने मार्ग को निष्कण्टक वना लिया।

काष्ठाङ्गार ने सेना को राजमहल घेरने का आदेश दे दिया और सत्यन्धर को वाहर आने की सूचना भेज दी। उस समय वह महारानी विजया के निकट बैठा हुआ था। सूचना को पाते ही वह सारी परिस्थिति को समझ गया। गर्भस्थ शिशु के कल्याण की कामना से उस ने अपनी पत्नी विजया को एक मयूराकार यन्त्र में बैठा कर राजमहल से बाहर भेज दिया। हाथ में तलवार लेकर वह राजमहल से बाहर जा पहुँचा। उसे देख कर सारी सेना लज्जित हो कर पीछे हटने लगी, पर कृतघ्न काष्ठाङ्गार ने स्वयं ही राजा के सामने पहुँच कर म्यान से तलवार निकाल ली, सत्यन्धर ने अपनी तलवार को नीचे डाल दिया, काष्ठाङ्गार ने उसे मार कर सारा राज्य हड़प लिया।

सत्यन्धर की हत्या कर के हत्यारे काष्ठाङ्गार ने उस के साले विदेहाधिपति गोविन्दराज को एक पत्र भेजा, जिस में लिखा हुआ था कि 'महाराज सत्यन्धर को एक मदान्ध हाथी ने उद्यान में क्रीड़ा करते समय मार डाला है, पर उस के कलंक का टीका लोग मेरे माथे पर लगाना चाहते हैं। आप ही वतलाइए कि जिस ने मुझ अकिंचन को राजा वनाया उसे मैं क्यों मारता? ऐसा कौन मूर्ख होगा जो वृक्ष की जिस शाखा पर बैठे उसी को काटने लग जाये? जिस नौका से समुद्र पार करना चाहे उसी में छेद कर दे? गाय के जिस थन से दूध दूहना चाहे उसी को छुरी से काट दे? जिस गिलास के जल से प्यास बुझाना चाहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी में धूलि डाल दे ? आप स्वयं विज्ञ हैं, अतः मेरे ऊपर तनिक भी अविश्वास न करें और शीघ्र ही यहाँ आ कर मुझे इस बदनामी से बचा दें। (काष्ठाङ्गार चाहता है कि अपने यहाँ बुला कर राजा गोविन्द का भी सफ़ाया कर दिया जाये)।

जिस श्मशान में राजा सत्यन्धर का दाह संस्कार हुआ, उसी के निकट केकी यन्त्र जा गिरा। गर्भवती महारानी मूर्च्छित हो गयी और इसी अवस्था में उस ने जीवन्धर को जन्म दिया। भयावनी अँधेरी रात थी। भाग्यवश वहाँ एक देवी जा पहुँची और उसी ने जच्चा-बच्चा की सेवा-सँवार की। उसी की प्रेरणा से महारानी विजया ने अपने नवजात शिशु को एक वृक्ष के नीचे लिटा दिया और स्वयं उसी की ओट में छिप गयी।

इसी अवसर पर उसी पुरी का सेठ गन्धोत्कट अपने नवजात शिशु के शव को लेकर वहाँ पहुँचा। शव को एक गड्ढे में तोप कर ज्योंही वह दूसरी ओर मुड़ा त्योंही उस की दृष्टि जीवन्धर पर जा पड़ी। उसे उठा कर वह अपने घर ले गया और अपनी पत्नी को सौंप कर यह कहा कि अपना पुत्र मरा नहीं था, तेरे कहने से मुझे भी भ्रम हो गया था जो कुछ दूर पहुँचने के बाद दूर हुआ। उस ने बड़े लाड़-प्यार से उस का पालन किया।

अध्ययन योग्य अवस्था के आते ही आचार्य आर्यनन्दी ने उसे समस्त विद्याओं और कलाओं का अभ्यास करवा दिया। इस के पश्चात् आचार्य ने जीवन्धर को स्वयं का और उस का पिछला इतिहास सुना दिया। काष्ठाङ्गार के काले कार-नामे को सुन कर तरुण जीवन्धर के मन में तीव्र प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न हो गयी, पर आचार्य के आग्रह पर वह एक वर्ष शान्त रहा।

आचार्य ने वन में जा कर दीक्षा ले ली। जीवन्धर तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा। अनेक तीर्थ क्षेत्रों के दर्शन के साथ उसे देशाटन का भी अवसर प्राप्त हुआ। इसी प्रसंग में उसे माँ के दर्शन हुए, जो तपोवन में साध्वियों के साथ रह कर विपत्ति के दिन काट रही थी और मामा से भी भेंट हुई, जो विदेह की प्रजा का पालन कर रहे थे।

क्षत्रियपुत्र जीवन्धर ने श्मशान में जन्म लेकर भी अपने गुणों को विकास की चरम सीमा तक पहुँचाया। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने एक भिक्षु-आर्य-नन्दी को व्याधि से छुटकारा दिलाया। अहीरों के अपहृत जिस गोधन को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काष्ठाङ्गार की सेना भी भीलों से वापस न करा सकी उसे वह अपने शौर्य से छुड़ा लाया। एक कुत्ते को मरते समय महामन्त्र सुना कर देवत्व दिलाया। एक लड़की को हाथी से बचाया। सर्पदंश से छटपटाती एक राजकुमारी को मृत्यु से बचाया। सुगन्धि चूर्णों के प्रकर्षाप्रकर्ष का निर्णय देकर दो कन्याओं के झगड़े को मिटाया। अपने को एक युवती के जाल से बचाया। इत्यादि अनेकानेक घटनाएँ उस के गुणों पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।

जीवन्धर के आठ विवाह हुए। अन्तिम विवाह विदेह में हुआ। वहाँ एक स्वयंवर में जीवन्धर की विजय हुई। इस अवसर पर काष्ठङ्गार भी उपस्थित था। जीवन्धर की विजय से वह बौखला उठा और उस ने वहीं पर युद्ध छेड़ दिया। युद्ध में काष्ठाङ्गार मारा गया। जीवन्धर की विजय हुई, फलतः उसे अपना राज्य वापस मिल गया।

जीवन्धर अपनी माँ और आठों पत्नियों के साथ रह कर प्रजा का पालन करने लगा, जिस से वह सुख का अनुभव करने लगी।

एक दिन जीवन्धर ने उद्यान-क्रीड़ा करते समय देखा कि एक वानर अपनी वानरी के समक्ष अन्य वानरी के साथ क्रीड़ा करने लगा, फलतः उस की वानरी नाराज हो गयी। उसे प्रसन्न करने के लिए वानर ने एक पनसफल उस के हाथों में समर्पित किया, पर इतने में ही एक माली ने उसे छीन लिया। इस घटना के देखने से जीवन्धर को वैराग्य हो गया और महावीर के समवसरण में जा कर उस ने दीक्षा ले ली। घोर तपश्चरण कर के उस ने मुक्ति लक्ष्मी का वरण किया और उस के परिवार की सदस्याओं ने यथायोग्य देवपद प्राप्त किया।

जीवन्धर को साधु अवस्था में देख कर एक देव को यह भ्रम हो गया कि यह मनुष्य नहीं, देव है। इस से जीवन्धर के व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है।

आज से तिरेपन वर्ष पूर्व सन् १९१६ मे टी० एस० कुप्पु स्वामी शास्त्री के द्वारा सात प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर सम्पादित गद्यचिन्तामणि मूल का प्रकाशन तंजौर से हुआ था, जो कई वर्षों से अप्राप्य है। अब इधर भारतीय ज्ञानपीठ ने इस ग्रन्थ का नया सटीक संस्करण निकाला है। लब्धप्रतिष्ठ प्रसिद्ध विद्वान् पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य ने, जिन्हें कुछ ही सप्ताह पूर्व राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुआ है, चार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर पुनः सम्पादित कर के प्रस्तुत ग्रन्थ को अत्यन्त प्रामाणिक विस्तृत संस्कृत व्याख्या और हिन्दी अनुवाद से विभूषित किया है। प्रधान सम्पादकीय, सम्पादकीय, प्रस्तावना, तुलनात्मक अध्ययन, विषयसूची और छह विशिष्ट परिशिष्टों ने इसे और भी अधिक आकर्षक वना दिया है। नयनाभिराम काग़ज़ एवं छपाई-सफ़ाई ज्ञानपीठ के रूप के अनुरूप हैं।

जो भी सहृदय आदम्बरी के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे वे पदे-पदे अभिनव उत्प्रेक्षाओं से प्रभावित हुए विना न रहेंगे।

जंबूसामिचरिउ

जंवूसामिचरिउ अपभ्रंश भाषात्मक श्रेष्ठ चरित महाकाव्य है जो ग्यारह सन्धियों में समाप्त हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में दी गयी प्रशस्ति बतलाती है कि इस महाकाव्य को वीर कवि ने विक्रम संवत् १०७६ में माघ शुक्ला दशमी को समाप्त किया था। इस की रचना में उन्हें एक वर्ष का समय लगा था। कवि के पिता का, जो कवि थे, नाम देवदत्त और माता का नाम सन्तुआ था। चार भाइयों में वीर कवि सब से बड़े थे। उन की चार पत्नियाँ थीं—जिनमती, पद्मा-वती, लीलावती और जयादेवी। जिनमती के गर्भ से उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, जिस का नाम नेमिचन्द्र था। वीर कवि पर सरस्वतीके साथ लक्ष्मी भी कृपा-दृष्टि रखती थीं। इस का एक आभास इस से भी लगता है कि उन्होंने अपने पिता की स्मृति में मेघवन पट्टण में एक जैन मन्दिर बनवाया था और उस में भ० महावीर की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी। वे अपभ्रंश के साथ अन्य अनेक भाषाओं में भी निष्णात थे। उन की इस रचना ने नयनन्दी, ब्रह्म जिनदास, राजमल और रइधू आदि को प्रभावित किया है।

जंवूसामि चरिउ में जंबूस्वामी के, जो ऐतिहासिक व्यक्ति थे, पाँच भवों का विस्तृत जीवनवृत्त वर्णित है। प्रसङ्गतः देश, नगर, ग्राम, पर्वत, उपवन, सरित्, ऋतु, प्रभात, रात्रि, चन्द्रोदय, उद्यानक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, वेशवाट, सुरत, गजोप-द्रव, सैन्य-प्रयाण, खेत और धूलिप्रसरण आदि का भी सरस सजीव वर्णन है।

जंवूस्वामी का जन्म मगध (बिहार) के अत्यन्त समृद्ध राजगृह नगर में सेठ अरहदास के घर हुआ था। उन की माता का नाम जिनमती था। उन का मन प्रारम्भ से ही विराग से प्रभावित था, फिर भी उन्होंने वयस्क होने पर अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिता के, जिन्होंने वचपन में ही खेल-खेल में अपने चार मित्रों को उन की कन्याओं को अपनी पुत्रवधू बनाने का वचन दे दिया था, आग्रह पर अपने विवाह की स्वीकृति दी। फलतः एक ही साथ उन का चार कन्याओं से विवाह हुआ। उन्हें जम्बूस्वामी के विरक्त मन का परिचय पहले से ज्ञात हो गया था, पर वे सोचती थीं कि अपनी अनुपम रूपराशि से उसे सराग बना लिया जायेगा। जब जंबूस्वामी से उन की पहली भेंट हुई तो उन्होंने बारी-बारी से अत्यन्त सरस रागवर्धक कहानियाँ सुनायीं। प्रत्येक की कहानी का उत्तर जंबूस्वामी ने विराग वर्धक कहानी के माध्यम से दिया। इसी अवसर पर वहाँ एक विद्युच्चर चोर चोरी की नियत से जा पहुँचा और वह भी उन के कमरे के बाहर दरवाज़े के निकट खड़ा होकर उन की कहानियाँ सुनने लगा। कहानियों का दौर रात भर चलता रहा। अन्त में प्रभात होते-होते जंबूस्वामी ने चारों पत्नियों और विद्युच्चर को भी प्रभावित कर दिया। फलतः जम्बूस्वामी के साथ इन पाँचों के अतिरिक्त उन के माता-पिता ने भी दीक्षा ग्रहण की। इसी कथानक को वीर कवि ने विस्तार पूर्वक रोचक पद्यशैली में लिखा है।

जंबूस्वामी के इसी जीवनवृत्त के आधार पर अभी तक जिन शताधिक विविध भाषात्मक कृतियों का परिचय प्राप्त हुआ है, उन में वीर कवि की प्रस्तुत कृति श्रेष्ठ है।

जंबूस्वामी ने भगवान् महावीर के समवसरण में जा कर उन के शिष्य सुधर्म से दीक्षा ग्रहण की थी। घोर तपश्चरण के बल पर उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। वे अन्तिम केवली थे। ४६३ ई० पू० में उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था।

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रस्तुत सुन्दर कृति का पहली बार प्रकाशन हुआ है। विस्तृत प्रस्तावना, हिन्दी रूपान्तर एवं विविध विशिष्ट परिशिष्टों ने इसे और भी अधिक आकर्षक बना दिया है।

लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध विद्वान् डॉ० हीरालाल जी के तत्त्वावधान में डॉ० विमलप्रकाश जैन ने इस कृति को सजाने के लिए जो परिश्रम किया है वह स्तुत्य है।

योगसारप्राभृतम्

योगसारप्राभृतम् विक्रम की ग्यारहवीं शती के प्रथम चरण के प्रसिद्ध विद्वान् निःसङ्ग योगिराज अमितगति (प्रथम) की संस्कृतभाषात्मक योग-ध्यान-विषयक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेष्ठ अमर कृति है, जो नौ अधिकारों के ५४० पद्यों में समाप्त हुई है। १६ पद्यों की, जो प्रायः अधिकारों के अन्त में हैं, रचना में मालिनी, उपजाति, शार्दूल-विक्रीडित, हरिणी, स्वागता, मन्दाक्रान्ता, पृथिवी, स्रग्धरा तथा रथोद्धता छन्दों का उपयोग किया गया है और शेष ५२४ पद्यों की रचना में अनुष्टुप् का।

प्रस्तुत ग्रन्थ के नौ अधिकारों में क्रमशः जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सँवर, निर्जरा, मोक्ष, चारित्र और चूलिका का विशद विवेचन है। चूलिका में मुक्तात्मा की आनन्दरूपा स्थिति, अनवसान चेतन स्वभाव, योग का लक्षण, भोगका स्वरूप, आत्मरोग-संसार, भोग-संसार से वास्तविक वैराग्य कब होता है आदि योग से संबद्ध अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

आदि से अन्त तक सभी पद्यों में प्रसाद गुण विद्यमान है। पढ़ते ही उन का अर्थ समझ में आ जाता है। निम्नलिखित पद्यों से इस की एक झलक मिल सकती है :

उदेति केवलज्ञानं तथा केवलदर्शनम्।
कर्मणः क्षयतः सर्वं क्षयोपशमतः परम् ॥१, १०

शत्रवः पितरौ दाराः स्वजना भ्रातरोऽङ्गजाः।
निगृह्णन्त्यनुगृह्णन्ति शरीरं, चेतनं न मे ॥५,१२

अहमस्मि न कस्यापि न ममान्यो बहिस्ततः।
इति निष्किंचनो योगी धुनीते निखिलं रजः ॥६, २०

पं० जुगल किशोर जी मुख्तार ने सम्पादन के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ पर विस्तृत हिन्दी व्याख्या भी लिखी है, जिसे उन्होंने 'भाष्य' कहा है। लगभग पचास प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरण देकर मूल पद्यों के मर्म का उद्‌घाटन किया गया है। कुन्दकुन्द साहित्य से जो गाथाएँ प्रस्तुत व्याख्या या फुटनोटों में उद्‌धृत की गयी हैं, उन से यह भी ज्ञात हो जाता है कि ग्रन्थकार पर आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य का अत्यधिक प्रभाव रहा है।

यह व्याख्या मुख्तार साहब ने नब्बे वर्ष से ऊपर की अवस्था में लिखी है, और उन के साहित्य का एक कीर्तिमान् है।

प्रधान सम्पादकीय, विस्तृत प्रस्तावना, विशद व्याख्या और उपयोगी परि-शिष्टों ने इस कृति को और भी अधिक आकर्षक बना दिया है। छपाई-सफ़ाई ज्ञानपीठ के रूप के अनुरूप है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे महत्त्वपूर्ण शोध प्रकाशन

केशव का आचार्यत्व	: डॉ० विजयपाल सिंह	२०.००
केशव और उनका साहित्य	: डॉ० विजयपाल सिंह	१५.००
केशव-सुधा	: डॉ० विजयपाल सिंह	१०.००
हिन्दी और मलयालम में कृष्ण-भक्ति-काव्य	: डॉ० भास्करन नायर	१५.००
कश्मीर : समस्या और पृष्ठभूमि	: गोपीनाथ श्रीवास्तव	१२.००
हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	: डॉ० एस० एन० गणेशन	१५.००
संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद	: डॉ० देवेन्द्र कुमार	१३.००
हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास	: डॉ० दशरथ ओझा	१२.००
समीक्षा-शास्त्र	: डॉ० दशरथ ओझा	८.००
पाश्चात्य समीक्षा की रूपरेखा	: डॉ० प्रतापनारायण टण्डन	१२.००
तुलसी और उनका काव्य	: रामनरेश त्रिपाठी	१०.००
नोबल पुरस्कार विजेता साहित्यकार	: ठाकुर राजबहादुर सिंह	९.००
आज का भारतीय साहित्य	: सं० साहित्य अकादेमी	८.००
डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध	: सं० भारतभूषण अग्रवाल	७.००
बच्चन का परवर्ती काव्य	: डॉ० श्यामसुन्दर घोष	६.००
कवियों में सौम्य सन्त : सुमित्रानन्दन पन्त	: डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'	५.००
हिन्दी और तुलुगु : एक तुलनात्मक अध्ययन	: डॉ० जी० सुन्दर रेड्डी	४.००
काव्य में उदात्त तत्त्व	: डॉ० नगेन्द्र तथा नेमिचन्द्र जैन	३.५०

राजपाल एण्ड सन्ज,
कश्मीरी गेट, दिल्ली—६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रंश का आदि काव्य

यह एक विचित्र साम्य है कि संस्कृत की तरह अपभ्रंश काव्य का प्रारंभ राम-कथा से ही हुआ। प्राकृत काव्य का भी शायद ऐसा ही उद्गम हो।

'राम' भारतीय जनमानस की अभिव्यक्ति का लोकप्रिय साधन रहे हैं। देश में जब कोई नया विचार, सम्प्रदाय या बोली आयी तो उस ने राम कथा पट पर ही अपने को अंकित किया। रामकथा पुरानी बनी रही, पर उस की ओट में कितनी ही नवीनता साहित्य के वातायन से जनजीवन तक पहुँचती रही।

महाकवि स्वयम्भू कृत पउमचरिउ अपभ्रंश का प्रथम काव्य है। राम का एक नाम पद्म भी था। जैन कृतिकारों को यही नाम सर्वाधिक प्रिय लगा। इस लिए इसी नाम को आधार बना कर प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश में काव्य ग्रन्थों की रचना की गयी। प्राकृत में विमलसूरि का पउमचरियं रामकथा की विशिष्ट कृति है। आचार्य रविषेण कृत पद्मचरित या पद्मपुराण संस्कृत में राम-कथा का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। स्वयम्भू का पउमचरिउ अपभ्रंश का सर्वप्रथम प्रबन्ध काव्य है। और संभवतया भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पउमचरिउ का हिन्दी अनुवाद अपभ्रंश प्रबन्ध काव्य का पहला हिन्दी अनुवाद है। यह विशेष परितोष की बात है उपर्युक्त तीनों ग्रन्थों पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में लगभग आधा दर्जन शोध प्रबन्ध लिखे गये और अभी लिखे जा रहे हैं इनकी जानकारी 'विश्वविद्यालयों में शोध कार्य' के अन्तर्गत दी गयी है। किन्तु यह हार्दिक खेद की बात है कि अभी तक इन में से एक भी शोध प्रबन्ध प्रकाशित नहीं हो पाया। इन महान् कृतिकारों की उपलब्धियों के अनुसन्धाताओं द्वारा किये गये मूल्यांकन से रामकथा की परम्परा के नये आयाम उद्घाटित होंगे।

—गो० च०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता

एक ऐतिहासिक रूपरेखा

भारत की समृद्ध एवं गौरवपूर्ण संस्कृति को प्रायः राजाओं और पैग़म्बरों की जीवनियों के अप्रामाणिक वृत्तान्तों के आधार पर चित्रित किया जाता रहा है। प्रसिद्ध लेखक डी० डी० कोसाम्बी ने 'प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता' को प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सही-सही प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य किया है। पुस्तक को एक सन्दर्भ-ग्रन्थ का रूप देने के लिए उन्होंने वड़े परिश्रम और अध्यवसाय से दुर्लभ चित्र भी जुटाये हैं। छह मानचित्र, ९८ आर्ट पेपर पर मुद्रित छायाचित्र और १६ रेखाचित्र पुस्तक का महत्त्व द्विगुणित करते हैं। विश्वप्रसिद्ध पुस्तक का हिन्दी में पहला अनुवाद श्री नेमिचन्द्र जैन ने किया है। रायल आठपेजी आकार में लगभग ३०० पृष्ठ। मूल्य : २५.००

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ • पटना-६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन साहित्य के सम्पादन के लिए प्राचीन कन्नड लिपि का ज्ञान आवश्यक है

पं० के० भुजबली शास्त्री

सम्पादन क्षेत्र के कतिपय मान्य विद्वानों की राय है कि उत्तर भारत में उपलब्ध संस्कृत, प्राकृतादि ग्रन्थों की हस्तप्रतियों की अपेक्षा दक्षिण भारत में उपलब्ध संस्कृत, प्राकृतादि ग्रन्थों की हस्तप्रतियाँ विशेष शुद्ध हैं। इस लिए जैन साहित्य के संशोधक एवं सम्पादकों के लिए खास कर कर्णाटक प्रान्त में उपलब्ध हस्त-प्रतियों का अवलोकन करना अत्यावश्यक है। पर उन हस्तप्रतियों के अवलोकन के लिए प्राचीन कन्नडलिपि का ज्ञान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। क्योंकि किसी भी भाषा का ग्रन्थ हो, यहाँ पर उपलभ्य ग्रन्थों में से अधिकांश ग्रन्थ आप को कन्नडलिपि में ताडपत्र पर मिलेंगे। काग़ज़ पर लिखित ग्रन्थ भी कन्नडलिपि में ही। इस लिए कन्नड भाषा से अपरिचित विद्वान् भी प्राचीन कन्नडलिपि को जानने से यहाँ के सभी संस्कृत, प्राकृतादि ग्रन्थों को आसानी से पढ़ कर उन ग्रन्थों का उपयोग कर सकता है।

कन्नडलिपि से अनभिज्ञ होनें के कारण ही उत्तर भारत के विद्वान् दक्षिण भारत की हस्तप्रतियों से लाभ नहीं ले पाते हैं। क्योंकि जब तक दक्षिण की उन हस्तप्रतियों को नागरी लिपि में नहीं लिखा जाता है, तब तक उत्तर भारत के विद्वानों के लिए दक्षिण की ये हस्तप्रतियाँ बेकाम की हैं। मेरे अनुभव की बात है कि अगर कोई विद्वान् किसी ग्रन्थ को कन्नडलिपि से नागरी लिपि में लिखवाना चाहे तो यहाँ पर नागरी लिपि में लिख कर देने वाले योग्य लेखक मिलते नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। साथ ही साथ चार्ज भी अधिक माँगते हैं। यहाँ की प्रतियों को उत्तर में भेजने पर वहाँ भी यही दिक़्क़त होती है। इस जटिल समस्या को हल करने के लिए प्राचीन कन्नडलिपि को सीखना ही एकमात्र सुलभ उपाय है। इस लिए युवक संशोधक और सम्पादक विद्वानों को मैं यही सलाह देता हूँ कि आप लोग यथा-शीघ्र प्राचीन कन्नडलिपि को सीखिए। इस लिपि को सीख जाने से आप लोग प्राचीन कन्नडलिपि में वर्तमान सभी संस्कृत, प्राकृतादि ग्रन्थों को विना दूसरे की सहायता से स्वयं पढ़ सकेंगे। नागरी में जितने अक्षर हैं, उतने ही, बल्कि वे ही (ह्रस्व ए और ओ को छोड़ कर) कन्नड के हैं। अतः कन्नडलिपि को सीखने में आप लोगों को विशेष कष्ट नहीं होगा।

जब पाश्चात्त्य विद्वान् भारत में आ कर या भारत के विद्वानों को वहाँ पर बुला कर भारतीय लिपि एवं भाषाओं को सीखते हैं तब आप लोगों के लिए प्राचीन कन्नडलिपि का ज्ञान हासिल कर लेना कोई कठिन काम नहीं है। हम लोग उत्तर भारत में आ कर जब हिन्दी भाषा सीखते हैं, तब आप लोग दक्षिण भारत में आ कर दक्षिण की भाषाओं को क्यों नहीं सीखते हैं? हमारे प्रातःस्मरणीय पूज्य आचार्य जिस प्रान्त में जाते थे वहाँ पर सर्वप्रथम उस प्रान्त की भाषा सीखते थे। बल्कि बाद में उस प्रान्तीय भाषा में ही ग्रन्थ-रचना करते थे। यही कारण है कि आज किसी भी प्रान्त को लीजिए। वहाँ का जैन साहित्य समृद्ध एवं सर्वोपरि है। पूर्वाचार्यों की परम्परागत उस आदर्श पद्धति को हम लोगों ने भुला दिया है। उस लाभकारी प्राचीन पद्धति को फिर अपनाने की बड़ी ज़रूरत है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि युवक संशोधक एवं सम्पादक विद्वान् मेरे इस महत्त्वपूर्ण सुझाव पर अवश्य ध्यान देंगे। बल्कि इस पुनीत कार्य को सम्पन्न करने के लिए इस वृद्धावस्था में भी मैं तैयार हूँ। क्योंकि मेरे जीवन में मेरे द्वारा सम्पादित कार्यों में यह भी एक रहेगा।

■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजस्थान के विश्वविद्यालयों में प्राकृत भाषा के अध्ययन की आवश्यकता

डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल

प्राकृत भाषा देश की उन तीन भाषाओं में से है जिन में हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं विकास की कहानी लिखी हुई है। संस्कृत, प्राकृत एवं पाली इन भाषाओं ने देश के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। समूचे देश को एक सूत्र में बांधने, उस को संस्कृति को एकात्मक रूप देने और मानव मात्र को ज्ञान-विज्ञान का सर्वोत्कृष्ट पाठ पढ़ाने में इन तीनों ही भाषाओं का समान योग है। संस्कृत भाषा को जिस रूप में देववाणी कह कर उस का सम्मान किया जाता है उसी प्रकार प्राकृत भी महाश्रमण आदिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर के मुखारविन्द की वाणी है। भगवान् महावीर ने संस्कृत में अपना प्रवचन देने के स्थान पर जन-जन की वाणो अर्ध मागधी भाषा में असंख्य लोगों को उपदेशामृत का पान कराया था। अर्ध मागधी प्राकृत का ही एक अंश है। वास्तव में प्राकृत देववाणो एवं जनवाणी दोनों ही हैं।

प्राकृत भाषा का अपना एक शानदार इतिहास है और इस का साहित्य भारतीय संस्कृति का ज्वलन्त कोष है। उस में प्राप्त होने वाली सामग्री के प्रकाश से देश के ज्ञान-विज्ञान का इतिहास ही निखर उठता है। महाश्रमण महावीर से लेकर १८वीं शताब्दी तक प्राकृत भाषा का साहित्य तीव्र गति से नदी के रूप में प्रवाहित होता रहा। इस भाषा के साहित्य में महाश्रमण महावीर को वाणी का संकलन किया गया, सिद्धान्त ग्रन्थों का निर्माण हुआ, लौकिक आख्यानों की रचना हुई, बड़े-बड़े काव्यों का सृजन हुआ, नाटक, व्याकरण, छन्द और कोशों का निर्माण हुआ। हज़ारों वर्षों तक इस ने जन-मानस को स्पर्श किया और अपने काव्य रूपों के माध्यम से उन में नव-चेतना का संचार किया जाता रहा।

प्राकृत भाषा को प्रमुख रूप से जैनाचार्यों ने अपनाया उस में सभो विषयों का साहित्य निबद्ध कर के उसे जन-जन को प्रिय भाषा बनाने में अत्यधिक योग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया। प्राकृत साहित्य की सी मृदुता, सात्त्विकता, नैतिकता, आध्यात्मिकता, तथा विचार-गम्भीरता के साथ-साथ रोचकता और लोकप्रियता केवल रामायण और महाभारत में ही उपलब्ध होती है। एक विद्वान् के शब्दों में-अब तो वह कल्पना उपस्थित की जा रही है कि ये दो महाकाव्य भी मूल में प्राकृत के हो रहे होंगे।

गुजरात एवं राजस्थान प्रदेश ने प्राकृत भाषा साहित्य के निर्माण प्रचार एवं सुरक्षा में अपना सर्वाधिक योग दिया। यहाँ के ग्रन्थ संग्रहालयों में प्राकृत ग्रन्थों की प्राचीनतम पाण्डुलिपियों का संग्रह है। जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर एवं जयपुर नगर के ग्रन्थ संग्रहालय प्राकृत साहित्य संग्रह की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जैसलमेर के जैन ग्रन्थ भण्डार में ताड़पत्र पर जो सर्वाधिक प्राचीन पाण्डुलिपि सं० ११९७ की है वह प्राकृत भाषा में निबद्ध ओघनिर्मुक्ति की पाण्डुलिपि है। यही नहीं ११वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक लिपिबद्ध किये हुए हज़ारों प्राकृत ग्रन्थ राजस्थान के इन भण्डारों में संग्रहीत हैं। आगम साहित्य के वेत्ता एलाचार्य चित्रकूट [चित्तौर] में विराजते थे तथा धवल, जयधवल एवं महाधवल के रचयिता आचार्य वीरसेन को जन्म देने का सौभाग्य भी राजस्थान को ही प्राप्त हुआ था, ऐसी कुछ विद्वानों की मान्यता है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के रचयिता आचार्य पद्मनन्दि राजस्थानी सन्त थे। ८वीं शताब्दी के आचार्य हरिभद्र सूरि जिन्हें समराइच्चकहा जैसी प्राकृत भाषा की कथा कृति को निबद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, राजस्थान के ही सपूत थे। इसी तरह प्राकृत भाषा की 'ज्ञानपंचमी कहा' अपभ्रंश की 'संयम मंजरी कहा' के रचयिता महेश्वर सूरि भी राजस्थानी विद्वान् थे। यही नहीं अपभ्रंश के विद्वान् महाकवि धनपाल एवं हरिषेण भी राजस्थानी विद्वान् थे जिन्होंने इस प्रदेश में प्राकृत एवं अपभ्रंश को जनता की भाषा बनाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। १७, १८वीं शताब्दी तक प्राकृत ग्रन्थों का प्रदेश में पठन-पाठन, अध्ययन एवं लेखन इन आचार्यों की कृपा से बराबर होता रहा। संस्कृत के नाटक साहित्य का एकांश भाग प्राकृत भाषा में निबद्ध है। नाटकों में सभी साधारण पात्रों एवं स्त्री पात्रों के मुख से प्राकृत भाषा में संवाद करा कर उस की लोकप्रियता एवं प्रचार को स्पष्ट रूप से स्वीकार करना पड़ा। महाकवि कालिदास के युग में भी प्राकृत भाषा आम जनता की भाषा थी। यदि ऐसा नहीं होता तो कालिदास, भवभूति एवं विशाखदत्त जैसे संस्कृत के कट्टर पक्ष-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाती प्राकृत भाषा का कभी प्रयोग नहीं करते।

लेकिन प्राकृत भाषा के इस क्षेत्र में आज-कल अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं है। प्रदेश में तीन विश्वविद्यालय हैं लेकिन एक भी विश्वविद्यालय में प्राकृत के अध्ययन के लिए कोई विभाग नहीं है। यह किसी भाषा-विशेष के प्रति ही उदासीनता नहीं है किन्तु भारत की प्रमुख भाषा के अमूल्य साहित्य के प्रति भी उपेक्षा है। सरकारी पत्रों में सिन्धी भाषा सहित १४ भाषाएँ हैं लेकिन उन में प्राकृत का कहीं नामोल्लेख नहीं है। आज जर्मनी में प्राकृत भाषा के अध्ययन के लिए जितना प्रयास है तथा विद्वानों में रुचि जाग्रत् है उतनो देश के किसी विश्वविद्यालय में नहीं, यह कैसी विचित्र बात है। आज-कल वहाँ डॉ० क्लाउज ब्रुह्म प्रमुख प्रस्तोता हैं जो ४-५ वर्ष पहले जयपुर आये थे और लेखक से उन का साक्षात्कार हुआ था। देश के बम्बई, नागपुर, कोल्हापुर, जबलपुर, मगध एवं कलकत्ता जैसे कुछ विश्वविद्यालयों में प्राकृत एवं अर्धमागधी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। देश के अन्य विश्वविद्यालयों में भी प्राकृत भाषा का अध्ययन प्रारम्भ करने के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जा रहा है। किन्तु राजस्थान के शिक्षा-शास्त्रियों का इस ओर कोई ध्यान नहीं है। डॉ० प्रभाकर माचवे के शब्दों में प्राकृत अध्ययन का यही हाल रहा तो बहुत कम समय में पाली, महाराष्ट्री, अवन्ती, गुर्जरी प्राकृतों को लोग भूल जावेंगे और एक-दो पीढ़ी के पश्चात् तो इन प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ कर समझने वाले इक्के-दुक्के ही रह जावेंगे इस लिए विश्वविद्यालय स्तर तक प्राकृत भाषाओं के अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है।

राजस्थान के तीनों विश्वविद्यालयों में प्राकृत भाषा के अध्ययन की व्यवस्था की जा सकती है। इस के लिए दो प्रश्न सामने हैं एक तो पढ़ने वालों की समस्या तथा दूसरे पढ़ाने वालों की उपलब्धि। लेकिन प्राकृत भाषा के अध्ययन करने वालों की कभी कमी नहीं रहेगी ऐसा लेखक का विश्वास है। जिन-जिन विश्वविद्यालयों में इस के अध्ययन की व्यवस्था है वहाँ विद्यार्थियों की कभी कमी नहीं रही। प्राध्यापकों की कमी का प्रश्न तो करना ही नहीं चाहिए। अभी प्रारम्भ में यदि प्राकृत का पृथक् विभाग नहीं खोला जा सके तो संस्कृत अथवा हिन्दी विभाग के अन्तर्गत इस अध्ययन को मान्यता दी जा सकती है और केवल २ प्रोफ़ेसरों से कला कालेज के अन्तर्गत इस की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था हो सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे नये और महत्त्वपूर्ण प्रकाशन—एक दृष्टि में

● आलोचना-शोध

कविता के नये प्रतिमान :
डॉ० नामवर सिंह १०.००

छायावाद : डॉ० नामवर सिंह ७.५०

गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य
डॉ० गोविन्दनाथ राजगुरु १६.००

मधुर रस : स्वरूप और विकास—१ :
डॉ० रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव'
१८.००

रंगमंच : बलवन्त गार्गी २५.००

● निबन्ध

व्यक्तित्व का विघटन :
गोर्की : अनु० शिवदानसिंह चौहान :
६.००

● जीवनी

निराला की साहित्य साधना—खंड-१
डॉ० रामविलास शर्मा २७.००

साहित्य के नोबेल पुरस्कार विजेता :
डॉ० श्रीमुरारी सिन्हा ११.००

● उपन्यास

राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल १५.००

सोधी सच्ची बातें :
श्री भगवतीचरण वर्मा १५.००

मैं, वे और आप : डॉ देवराज ५.००

टोपी शुक्ला : डॉ० राही मासूम
रज़ा ५.००

यारों के यार : तिन पहाड़ :
कृष्णा सोबती ४.५०

अपने से अलग :
डॉ० गंगाप्रसाद विमल ६.००

● कहानी

पेपरवेट : गिरिराज किशोर ४.००

रिश्ता और अन्य कहानियाँ :
गिरिराज किशोर ४.५०

समुद्र : रामकुमार ५.००

युद्ध की कीमत : (रूसी कहानियाँ)
अनु० शिवदानसिंह चौहान,
श्रीमती विजय चौहान ५.००

● नाटक

एवम् इन्द्रजित् : बादल सरकार
अनु० प्रतिभा अग्रवाल ३.७५

नगरवधू : प्रतिभा अग्रवाल ४.००

लहरों के राजहंस : मोहन राकेश ६.००

जौहर की ज्योति :
डॉ० रामकुमार वर्मा ३.५०

● काव्य

पौ फटने से पहिले :
श्री सुमित्रानन्दन पन्त ८.००

बहुत रात गए : श्री नरेन्द्र शर्मा ८.००

शीशों का मसीहा : 'फ़ैज़' ८.००

कैकेयी : चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र'
१०.००

● विविध

मानविकी कोश (मनोविज्ञान खंड)
डॉ० पद्मा अग्रवाल १५.००

आधुनिक युग में धर्म :
डॉ० राधाकृष्णन् ७.००

सरकस की कहानी :
सत्यनारायण सिन्हा २.००

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुजरात के विश्वविद्यालयों में प्राकृत की अध्ययन-व्यवस्था

प्रो० कानजी भाई पटेल

गुजरात राज्य में कुल मिलाकर छह विश्वविद्यालय हैं—(१) एम० एस० युनिवर्सिटी, बड़ौदा (२) सरदार पटेल युनिवर्सिटी, विद्या नगर (आणंद) (३) गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद (४) दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत (५) सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट तथा (६) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद।

गुजरात विद्यापीठ को एक स्वतन्त्र युनिवर्सिटी के रूप में मान्यता मिली है। इस में प्राकृत की न तो पाठ्यक्रम समिति ही है और न पाठ्यक्रम। दक्षिण गुजरात तथा सौराष्ट्र युनिवर्सिटियाँ, गुजरात युनिवर्सिटी से ही अलग हुई हैं अतः इन में पाठ्यक्रम सभी स्तर पर एक जैसा ही है।

पाठ्यक्रम समिति : गुजरात युनिवर्सिटी में प्राकृत-पालि भाषा की स्वतन्त्र पाठ्यक्रम समिति की व्यवस्था है। इस स्वतन्त्र समिति के सदस्य सेनेट के भी सदस्य (मेंबर्स) होते हैं। प्रत्येक सेनेट सदस्य को अधिक से अधिक दो समितियों के सदस्य बनने का स्वतः अधिकार मिल जाता है। ये सदस्य फिर विषय-विशेष के विज्ञ दो-तीन सदस्यों को सहायक-रूप में नियुक्त (को-ओप्ट) करते हैं। इस युनिवर्सिटी से अलग हुई दक्षिण गुजराज युनिवर्सिटी तथा सौराष्ट्र युनिवर्सिटी में प्राकृत-पालि की नियुक्त पाठ्यक्रम समितियाँ हैं, जिनके सदस्यों की नियुक्ति स्वयं वाइस चांसलर करता है।

इस प्रकार की स्वतन्त्र पाठ्यक्रम समितियाँ बड़ौदा और विद्यानगर की युनिवर्सिटियों में नहीं हैं। बड़ौदा में प्राकृत भाषा, पालि और संस्कृत को समिति में सम्मिलित है तथा विद्यानगर में यह संस्कृत समिति में।

पाठ्यक्रम : गुजरात के इन सभी विश्वविद्यालयों में त्रिवर्षीय स्नातक अभ्यासक्रम (टी० डी० सी०) चलता है। बड़ौदा और विद्यानगर की युनि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

र्सिटियों में गौण विषय के रूप में प्राकृत पढ़ाने की व्यवस्था है। वड़ौदा में पाठ्यक्रम होते हुए भी एम० ए० के सिवा अन्य स्नातक पूर्व-वर्गों में सम्भवतः विद्यार्थियों के अभाव में प्राकृत-गौण विषय की भी सुविधा नहीं है। विद्यानगर में बी० ए० तक, मात्र दो प्रश्न-पत्र ही प्राकृत भाषा के गौण विषय के रूप में पढ़ाये जाते हैं। यहाँ एम० ए० में भी गौण विषय की सुविधा है।

गुजरात, दक्षिण गुजरात तथा सौराष्ट्र आदि की इन तीन युनिवर्सिटियों में प्राकृत भाषा का पाठ्यक्रम तीन प्रकार का है, यथा—

(१) प्री० युनिवर्सिटो तथा प्रथम वर्ष बी० ए० में द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य विषय (संस्कृत, प्राकृत, पालि, फ़ारसी आदि में से कोई एक अनिवार्य)।

(२) प्रथमवर्ष बी० ए० तथा द्वितीय वर्ष बी० ए० में दो-दो प्रश्नपत्रों का गौण विषय के रूप में पाठ्यक्रम।

(३) द्वितीय वर्ष बी० ए० तथा तृतीय वर्ष बी० ए० में से द्वितीय वर्ष में एक प्रश्न पत्र का तथा तृतीय वर्ष में छह प्रश्नपत्रों का मुख्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम।

इस प्रकार कॉलेज के प्रारम्भिक दो वर्षों में दो प्रश्नपत्र अनिवार्य, प्रथम और द्वितीय वर्ष के कुल चार प्रश्नपत्र गौण तथा द्वितीय एवं तृतीय वर्ष में सात प्रश्न-पत्र मुख्य विषय के रूप में पढ़ाये जाते हैं। मात्र गौण विषय ले कर अभ्यास करने वाला छात्र स्नातक अभ्यासक्रम में कुल मिला कर ६ प्रश्नपत्रों का अभ्यास करता है तथा मुख्य विषय का छात्र तेरह प्रश्नपत्रों का। एम० ए० में गौण विषय के रूप में दो प्रश्न पत्रों का तथा मुख्य विषय के रूप में छह प्रश्न पत्रों का अभ्यासक्रम निर्धारित है।

दक्षिण गुजरात और सौराष्ट्र युनिवर्सिटी में भी उपर्युक्त मुख्य और गौण विषय का अभ्यासक्रम निर्धारित होते हुए भी नाम मात्र का ही है। क्योंकि यहाँ किसी भी कक्षा में इसे पढ़ाने की सुविधा नहीं है। दक्षिण गुजरात में मात्र प्रारंभिक दो वर्षों में अनिवार्य विषय के रूप में एक-एक प्रश्नपत्र पढ़ाने की सुविधा है और वह भी मात्र एक ही कॉलेज में। (एस० बी० गार्डा कॉलेज,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवसारी) अन्य किसी भी स्तर पर प्राकृत के साथ कोई विद्यार्थी अब तक परीक्षा में नहीं बैठा है।

गुजरात युनिवर्सिटी में प्रारंभिक दो वर्षों में अनिवार्य विषय के रूप में एक-एक प्रश्नपत्र पढ़ाने की सुविधा अनेक महाविद्यालयों में है। किन्तु गौण एवं मुख्य विषय के रूप में प्राकृत पढ़ाने की सुविधा गुजरात युनिवर्सिटी में ही नहीं, अपितु पूरे गुजरात में दो ही महाविद्यालयों में है। ये दो महाविद्यालय हैं— (१) एल० डी० आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद तथा (२) श्री और श्रीमती पी० के० कोटावाला आर्ट्स कॉलेज, पाटण। एम० ए० गौण तथा मुख्य विषय के रूप में प्राकृत पढ़ाने की सुविधा गुजरात युनिवर्सिटी में है। इसी वर्ष इस के भाषा भवन में एक व्याख्याता की नियुक्ति हुई है।

पालि का पाठ्यक्रम निर्धारित होते हुए भी गुजरात के किसी भी महाविद्यालय में इसे पढ़ाने की सुविधा नहीं है। मात्र वड़ौदा युनिवर्सिटी में गौण विषय के रूप में तथा गुजरात युनिवर्सिटी में एम० ए० स्तर पर ही इसे पढ़ाने की सुविधा है।

छात्र वृत्ति : गुजरात में किसी भी महाविद्यालय या सामाजिक-संस्थाओं की ओर से बी० ए० तक किसी भी प्रकार की छात्रवृत्ति देने का प्रबंध नहीं है।

प्राकृत मुख्य विषय ले कर बी० ए० में प्रथम आने वाले विद्यार्थी को प्राकृत मुख्य विषय ले कर एम० ए० करने के लिए सौ रुपये प्रति माह की एक राष्ट्रीय छात्रवृत्ति मिलती है।

प्राकृत विद्यामण्डल की ओर से कुछ छात्रवृत्तियाँ अखिल भारतीय स्तर से मिलती हैं।

गुजरात में जैन वाङ्मय के अध्येता–अनुसन्धित्सु :

गुजरात के जैन वाङ्मय के ख्यात नाम विद्वान् पण्डित सुखलाल जी, पण्डित बेचरदास जी, पं० दलसुख भाई मालवणिया आदि सुपरिचित हैं। अन्य विद्वान् इस प्रकार हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. प्रो० वी० एम० शाह, एम० ए०, आनररी प्राध्यापक, विवेकानन्द आर्ट्स व कामर्स कालेज, अहमदाबाद। प्राकृत व जैन दर्शन के माने हुए विद्वान्। एल० डी० आर्ट्स कालेज के एक समय प्रिन्सिपल रहे हैं। आप के पुरुषार्थ से गुजरात में प्राकृत व जैन दर्शन के अध्ययन का प्रचार व प्रसार हुआ है। प्राकृत विद्या मण्डल की स्थापना में उत्साह दे कर योग दिया है। २० साल से अध्यापन क्षेत्र में। गुजरात युनिवर्सिटी में Ph.D. के मान्य निर्देशक।

२. डॉ० अम्बाशंकर नागर, एम० ए०, पी-एच० डी०, रीडर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, भाषा भवन, गुजरात युनिवर्सिटी। गुजरात के क्षेत्रीय अनुसन्धान के प्रणेता तथा गुजरात के समस्त जैन-अजैन साहित्यकारों का वास्तविक मूल्यांकन कर उन्हें तथा उन की कृतियों को प्रकाश में लाने को दिशा में अग्रसर। आप एक निष्ठावान् शिक्षक अध्ययन-अनुसन्धान के निर्देशक, अभ्यासी, सम्पादक, कवि, चित्रकार तथा संगीतज्ञ हैं। पता—B/४ युनिवर्सिटी स्टाफ़ क्वार्टर्स, नवरंगपुरा, अहमदाबाद।

३. डॉ० हरीश गजानन शुक्ल, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री तथा श्रीमती पी० के० कोटावाला, आर्ट्स कालेज पाटण (उ० गु०)। गुजरात के जैन कवि तथा उन की हिन्दी कविता के विशिष्ट एवं वरिष्ठ अध्येता, संनिष्ठ शिक्षक तथा राजस्थान एवं गुजरात के जैन सन्तों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व निर्धारण में महती आस्था एवं दृढ़ता के साथ संलग्न। पता—गणपति की पोल, पाटण, जि०, मेहसाणा (उत्तर गुजरात)

४. डॉ० वी० जे० चोक्सी, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राकृत के अध्यापक, तलोद कॉलेज, तलोद, सांबरकांठा (गुजरात)। प्राचीन जैन-अजैन गुजराती कवियों तथा उन की कविता के अध्येता।

५. प्रो० कानजीभाई पटेल, एम० ए०, प्राकृत तथा पालि। प्राध्यापक तथा अध्यक्ष प्राकृत विभाग, श्री तथा श्रीमती पी० के० आर्ट्स कॉलेज, पाटण (उ० गु०)। पं० बेचरदास दोशी के निर्देशन में 'अनुयोगद्वार सूत्र : एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्ययन' विषय पर अनुसन्धित्सु, एक प्रभावक-कुशल शिक्षक तथा जैन वाङ्मय एवं दर्शन के विशिष्ट अध्येता। पता, शान्तिनाथ की पोल, पाटण (उ० गु०)।

६. श्री नवीन भाई एच० शाह, एम० ए०, बी० एड्० प्राकृत के अध्यापक, श्री तथा श्रीमती पी० के० कोटावाला आर्ट्स कॉलेज, पाटण (उ० गु०)।

७. श्री अशोक एस० शाह, प्राकृत के अध्यापक, श्री तथा श्रीमती पी० के० कोटावाला आर्ट्स कॉलेज, पाटण (उ० गु०)।

८. श्री रमणीक लाल शाह, एम० ए० (प्राकृत के साथ प्रथम श्रेणी) पं० बेचरदास दोशी के निर्देशन में "विलासवई कहा" विषय पर संशोधन रत। पता, एल० डी० इंस्टीट्यूट ऑफ़ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद-९।

पी-एच० डी० प्राप्त

१. डॉ० हरीश जी शुक्ल, पी-एच० डी०, १७-१८ वीं शती के गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी कविता।

अनुसन्धान रत

१. प्रा० के० एस० पटेल—अनुयोगद्वार सूत्र : एक अध्ययन।

२. श्री रमणीकलाल शाह—विलासवई कहा।'

३. कु० कोकिला चोक्सी—उत्तराध्ययन सूत्र : एक अध्ययन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्द पाकेट बुक्स के नये प्रकाशन

एक वायलिन समन्दर के किनारे (उपन्यास)
कृश्न चन्दर २.००

उनसे न कहना (उपन्यास)
भगवती प्रसाद वाजपेयी २.००

साँप की बेटी (जासूसी)
कर्नल रंजीत २.००

राजनैतिक हत्याएँ (रोमांचकारी)
हरि मोहन शर्मा २.००

चलता पुर्जा (हास्य-व्यंग्य)
शौकत थानवी २.००

प्राकृतिक इलाज (स्वास्थ्य)
धर्मचन्द सरावगी २.००

काका के धड़ाके (हास्य-व्यंग्य)
काका हाथरसी १.००

गिरते महल

लोकप्रिय उपन्यासकार गुरुदत्त की लेखनी का एक और चमत्कार। दो पीढ़ियों के संघर्ष में टूटते परिवारों को कैसे बचाया जा सकता है? प्रारम्भ से अन्त तक पठनीय एक सशक्त उपन्यास।

लेखक—गुरुदत्त

मूल्य ३ रुपये

हमारा नया सूची-पत्र मँगाइए और भरपूर कमीशन की शर्तों के लिए लिखिए।

हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

A STUDY OF ASTRONOMICAL ASPECT IN JAINISM

Sri Gyan Chand Jain

India is generally known as a country of mythology by the modern world. Even the Indians hold their philosophical Scripts to be fantastic and un-scientific. The reason is though a handsome quantity of the literature relating to different philosophies of India have been translated into foreign languages, but no efforts have been made either by our Government or by religious authorities to explain the ancient sciences of India in modern terms. Had the Indians taken interest in putting their philosophies parallal to the modern sciences, the world would have noticed the superiority of the sciences of India. It is, therefore, our own fault that the world formed a wrong idea towards Indian Philosophies and most of the Indians lost their faith in them.

This age is very often said a golden period of advanced astronomy. The man of this age is proud of his knowledge of the Heavens. He says that he has full filled the dream of lunar conquest seen by his ancestors in the past. On the other hand our Holy Books do not agree with the said claim of the modern man. And thus the subject of astronomy is such which has played a fundamental role in making the Indian disloyal to their religious concepts. Even the Jainas of

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

India seem to be much impressed by the modern system of the world and suspect the teachings of the Jinas. Though the subject of astronomy is a most critical one, still I am attempting to touch the same in this article.

Before entering into the material subject of the article, it is of interest to make the readers familiar with the Jinas, or 'Tirthaṅkaras', and their doctrine. Besides other doctrines of the world, Jainology also inspires the person to make his progress or 'Ātmonnati', But the term 'self-progress' has a different meaning in Jainism. Others believe that there is one Almighty God. He is both creator and ruler of the universe. The man should, therefore, feel obliged to the God and the feeling of obligation is the real way of Self-progress. But the Jainism teaches the man that he himself may become a God by achieving perfect knowledge of the universe and its building bricks. Achievement of such perfect knowledge is the self-progress in right meanings. The man has to undergo the hardships of 'tapa', or research as we may call it in modern words, to have perfect knowledge. Suitable time and place is necessary for carrying out the research. The Jinas experienced hardships of 'tapa' and then they obtained such a perfect knowledge that nothing in the universe was left behind unseen and unsolved. Since their knowledge was perfect in all respects they ceased their deaths and births in the world and became Gods. They preached whatever they observed and determined. They are now enjoying eternal peace in a body-free state. The Jainas should, therefore, give up the idea that the Jinas are the controllers of wordly affairs or a man

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

might become a Jina simply by assuming himself an observer and knower of all. The fact is that the man has to undergo the hardships of 'tapa' for becoming an observer and knower.

As stated above, we find that the Jinas were neither deities nor the messengers of any unseen God, but they were born on this earth and solved the problem of the universe on the basis of their own researches. The teachings of the Jinas were stored in books written by their follower Monks, called the 'Āchāryas'. Though the Monks stored the preachings in all subjects, but we are not lucky enough to have them all due to the destruction of the literature in the past. However, whatever we have available to us is worth value and the world should be benefited with it. We have several books in the subject of astronomy based on the teachings of Jinas. A few of them are 'Rājavārtika', 'Trilokasāra', 'Lokavibhāga', 'Triloka Pragyapti' and 'Jambudwīpa pragyapti' etc. Leaving a few discrepancies in various works in astronomy, the basic system of the world is exactly the same everywhere. It should also be noted that nearly the same system is available in other Indian and foreign philosophies. Though a deatailed account of the universe and its building bricks is available in Jain literature, but I would deal only with the Inland of which our earth forms a part.

There are numerous inlands and oceans surrounding one another. All are flat and circular. In the midst of all, there is an inland named Jambu. It is a regular circle with the diameter equal to one lak 'yojans' (a scale of the early days). The entire inland remains divided into seven sub-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

inlands and six aparting hills. There lies a mountain, named Meru, in the centre of Jambu Inland. The Meru is one lak yojan high, one thousand yojan under the earth and the remaining above the earth. The Meru does not only divide the central sub-inland into two parts, but also the main inland into two zones, Northern and Southern. The earth upon which we live forms a portion of the sub-inland named Bharatashetra. Bharatashetra is a corner sub-inland in the Southern Zone. And hence it forms the shape of a segment in the circle of main inland. Its sagitta (vishkambha), chord (jyā) and arc (dhanusha) are a bit more than 526, 14471 and 14528 yojanas respectively. It should be noted here that the Jaina Monks have taken the value of pie equal to the square root of ten in their calculations, while this value has been found a bit less by the modern mathematicians. Otherwise the formulas adopted by the Monks in calculating the area of a circle and determining the length of chord are exactly the same as in modern mathematics. On the whole the said discrepancies do not affect the system at all.

In chapter of 'Jyotishloka' it has been stated that there are two moons and two suns in share of Jambu inland. Each set of moon and sun has attached to it a constant quantity of planets and stars. The planets are of various colours; some black, others red or blue or yellow. All heavenly bodies are hemi-spherical. The diameters or the linear sizes of the moons and the suns are 56/61 and 48/61 yojans respectively. The heights of the stars, suns, moons and the planets from the

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ground are 790,800,880 and 900 yojans respectively. Sun, moon etc. revolve over the main inland around the Meru mountain. In this way the heights of the moon and the suns from the earth are always constant, but their distances in respect to a certain portion of the earth keep on changing continuously due to revolution. And hence no definite angular size of the moon or of the sun can be determined. We may, however, calculate roughly maximum and minimun angular sizes with respect to Bharatakshetra. In case of moon the same become to nearly 3-59 minutes and 1-8 seconds; while in case of sun the maximum becomes to 3.38 minutes and the minimum 1.45 seconds.

It is apparent by the said system of the world that the Jinas observed the earth a flat disk at rest and the heavenly bodies revolving over it. But on the very first look the system of the Jinas seems to be defective for so many reasons. Firstly the apparent motions of the moon and of the sun are around the earth and not over the earth as preached by the Jinas. Secondly the two suns keep on shining over the flat earth continuously and hence no possibility of nights is made out in the Jinas system. Thirdly the angular sizes of both moon and sun have been found nearly 32 minutes; which are nearly ten times larger the maximum ones of Jinas system. Fourthly the apparent situation of the moon is below the sun, while the Jinas told the moons above the suns. Fifthly two suns and two moons are not visible to the eye. Above all that Meru mountain is not seen by the eye around which the bodies are said to revolve. In these

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

circumstances the founders of modern astronomy, Copernicus–Kepler–Galileo etc. should not have been wrong in holding the earth a sphere in motion.

But a second look on the Jinas system does not find any defect in it. The reason is that the second look finds a such screen in between the earth and the heavens which does not allow the eye to see the objects lying beyond it. Since sun, moon and other stars etc. are situated beyond the screen the eye should not see them directly. And thus the determinations based on the eye observations become within the meanings of 'deceit' or 'self-deceit'. It is a fact that the then priests of Europe openly called the new idea of Copernicus and others an illusion. But in want of the knowledge of the said screen they could not explain what they meant by illusion. Unfortunately the situation is still the same. And hence it is essential to the man to get knowledge of the screen and its effects in order to have a real glimpse of the heavens.

The said screen is nothing but the airy atmosphere of our earth. The astronomers do know about the atmosphere, but unfortunately they do not know its effects, The result is that they still believe that shining bodies are the real bodies. Otherwise the fact is that the shining or apparent bodies are the images of the real ones. The astronomers, as well as others, watch the motions of the lunar and solar images and on the basis of their observation they make the flat earth wrongly a sphere. As would be seen later on, the atmospheric effect causes our eyes to see the images in reverse order too.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

It is the atmospheric screen which magnifies the sizes of the images and hides the Meru Mountain. And thus the system of the Jinas seems to be defected due to our own ignorance, otherwise it is entirely correct and within the expectations. To decide and determine the nature and properties of the images, a study of the Science of Optics is quite sufficient.

We know by experience that the air becomes less and less dense as we go higher and higher up in the sky, and therefore it is always within the expectations that the air reaches only a certain height out beyond the earth. We know further that the atmospheric envelop of the earth is somehow like a dome and hence it is an obvious fact that the earth and the heavens are situated in media of varying densities. The earth lies in a denser medium and the heavens in a rarer one. In the circumstance the incident rays of the heavenly bodies would not travel straight within the limits of atmospheric dome, but they would be refracted on the convex surface of the atmosphare. And thus an image of the body would be formed within the atmospheric dome. The eye would see only the images so formed, while the real bodies would remain hidden. A study of the Vedas tells us that the Indian Monks did know the refracting nature of the atmosphere. That is why we find there a clear arrangement of 'Chandra-mandala' (image) and 'Chandraloka' (real moon).

The next problem is to determine the properties of image. Since the refraction takes place on a convex surface of a denser medium, there may be five possible cases of forming the image depending upon the distance of the object from

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

refracting surface. In one case the image may be virtual, erect and magnified. In two cases the same may be real, inverted and diminished in size. In other cases it may be real, inverted and magnified. But we do not know the radius of curvature of the atmospheric dome and the distances of the bodies from the refracting surface, and hence we may not choose any particular case. However, we may say with confidence that the images should not be virtual and hence erect. The reason is that the light possesses such a nature that it does not become visible unless it is reflected and scattered by dust particles or air. And hence the images lie in that zone where air is present to make the light visible. In the circumstance they are bound to be real and hence inverted. In such a case the invertion would not mean only the invertion of a particular body, but the order of their arrangements would also be reversed. i.e. the image of the nearest body would appear to be the farthest and that of the farthest would appear to be the nearest to the earth. Also the motions of the images would differ from the motions of the real bodies. And hence a knowledge of the situations and the motions of the images can not help the man in determination of the situations and the motions of the real bodies. Nor such knowledge is reliable in determination of the exact shape of the earth. But unfortunately the founders of the modern astronomy relied upon the knowledge of the images in determination of the size and shape of the earth.

It is of interest here to make the readers familiar with the methods the astronomers adopt in determining the

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

dimension and distance of a heavenly body. To decide the distance they measure the angle of parallax with respect to some back-ground star from two different places, the distance in the two being known. The angles of parallax in respect to the moon and the sun have been measured at mean distance at 57 minutes-2.7 seconds and 8.80 seconds respectively. The distance in the two different places of observations being known, the distance of the body from the earth is determined by the following formula based upon the Principles of Triangulation.

$$\text{Distance} = \frac{\text{distance in the two places of observation (called the base line)}}{\text{sine of parallax.}}$$

In accordance with the said equation, the lunar and solar distances at mean have been found 238857 and 92950000 miles respectively.

The astronomers determine the dimension or the linear size of a body by measuring its angular size. The angular size of a body is a fraction of a radian in the circle whose radius equals the distance of the said body. The angular sizes of both moon and sun have been measured nearly 32 minutes. On combining the knowledge of angular size with that of the distance under the Principles of Triangulation, the astronomers have calculated the diameters of the moon and the sun equal to 2160 and 864000 miles respectively.

It is evident by the said methods of determining the distance and dimension of a heavenly body that the astronomers still believe that the atmospheric screen does not hide

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

the real body and it is visible to them to measure its parallax or angular size. Otherwise the fact is that they do not see the body at all. Though they have measured the parallax and angular size of the image, but it can not be said if their knowledge towards the image even is correct. The reason is that the methods adopted by the astronomers are not such which may provide any true knowledge when the image and the observer lie in a non-homogeneous medium. Even if the two might be lying in one homogeneous medium, the 'accomodation' of eye would not allow the man to have knowledge of a distant body in accordance with the Principles of Ratio & Proportion. Since the moon, the sun, the stars and the planets are situated in a rarer medium and their images lie in a non-homogeneous one, the Principles of Triangulation and those of Ratio & Proportion can neither provide any knowldege of real bodies nor of their images. And hence there seems no genuineness in the figures determined by the astronomers of this age. In such a case there is no just in rejection of the figures described in Jainism simply due to the reason the same do not coincide with the modern ones. As regards the problem of two suns and two moons, it is not too difficult to be solved. The fact is that the Jambu Inland is divided into two zones, and one set of sun and moon covers only one zone, although it does revolve over the other one. The other problem is of nearly a constant angular size of the image with respect to a certain portion on our earth. This one is also very easy to solve. The fact is that the atmospheric dome is not perfectly cyclic,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

but nearly elliptic. And hence the size of the image may be nearly the same whether the body is nearer or farther away. The said evidences are not only within the expectations, but also demonstrable. Since the science of optics had not come into existence in the age of Copernicus and Galileo etc., they were likely to think the earth a sphere in rotation, but it does not look nice to follow the same path even to-day.

It is evident by the discussion made so far that the Jinas system of the world seems to be incorrect only by the time the atmospheric effect is not taken into account. It will be seen now that the problems of solar energy, nights and seasonal changes etc. can never be solved otherwise. For the sake of convenience I would first take up problem of solar energy. Founders of the modern system, Copernicus etc., could not describe any particular reason for solar energy. However a century before one German physicist named Helmholtz made a hypothesis and said that linear size of the sun contracts nearly 75 meters a year to give required energy to the earth. This hypothesis is known as 'contraction theory'. But after the development of Nuclear Physics, the said theory was rejected by the astronomers and it was believed that the Hydrogen atoms present in the sun are being fused into the atoms of Helium and the loss in mass is converted into energy. This idea is known as 'fusion theory'. It is correct that the Fusion Theory is more convincing than the former one, but this too does not answer the question what the energy is.

It is only the system of the Jinas which satisfies the man in all respects. The fact is that the solar energy is the light

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

which reaches us through its image. The sunlight, often called the white light, is a mixture of several monochromatic lights. These lights not only differ in colours but their wave lengths. and angles of deviation are also different. Sir Issac Newton succeeded for the first time in Europe in splitting a white ray into its constituent lights by passing it through a prism. In the circumstance the astronomers should have realised the fact that the sun might not be the source of light by itself. They should have given due importance to the constituents of white light and searched for various origins of various lights. It is a matter of common sense that the white light could not be possibly decomposed into various monochromatic lights unless various monochromatic lights have their independent existence in the universe and are mixed up by some suitable refracting device. Though the founders of modern system fail in accounting the said origins and device, but the Jinas system has a clear statement of the two. The Jain Learneds should not stick to the words that the sun has twelve thousand warm rays and therefore the Jinas told the sun the source of energy by itself. But we should consider the nature of of light and give importance to the planets which emit lights of various colours. Then we would feel that various monochromatic rays emitted by 'budh'–'shukr' etc. fall on the sun and the sun combines them all to form white light. In this case too the warm rays would be called those of the sun. The reason is that the various monochromatic rays in their individual capacity are neither white nor warm. They become warm only after mixing up by the sun. In such a case the

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

sun is nothing more than a medium which mixes the various lights of various colours. The Physicists are still unable in explaining any particular cause for various wave lengths and angles of deviation, but a study of Jinas Teachings does provide knowledge of the same. Various sizes of various planets are responsible for various wave lengths and various locations of various planets with respect to the sun are responsible for various angles of deviations.

It is evident by the nature of the sunlight that the chemical elements (Hydrogen–Helium–Oxygen–Iron–Silver–Gold–Uranium etc.) might be a secondary source of energy, but the primary one is the 'group of planets'. In the circumstance the group of the planets should always be lying above the sun. But in the modern system of the world firstly all of the said planets have not yet been discovered and secondly the positions of the known ones are different. And hence the modern solar-system seems apparently defective. Besides the fact stated above the said group of the planets should also lie above the moon. The reason is that our earth both absorbs the energy coming from the heavens and radiates the same too. Since the energy is some thing in reality and hence it can not be believed that the energy radiated by the earth is destructible. Also it is observed by us that the energy tends to go up higher in the sky. In the circumstance the energy should go back to the places of its origin. But it requires a splitting medium to reach on varisous planets. In such a case it is always within expectations that the moon serves the purpose of splitting medium. And thus we find the

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

genuine cause of lunar brilliancy. we should remember that the said cause in the modern system is the reflected light of the sun, but such possibility could not be made out as the moon lies above the sun.

Before touching the problem of lunar phases and that of eclipses, it is better to see that no possibilty of nights and that of the seasonal changes can be made out in the modern system. If we suppose the earth a sphere in rotation, the half the sphere facing the solar image would be sharp bright and the other half would be less bright. The reason is that the light of the sun would travel along-with the sides of the earth and it would be scattered and reflected on the pack also by the dust particles present in the atmospheric dome. And thus the nights would not be dark. In brief the earth would cast its own shadow in the night zone. But the properties of shadow are different from those of the darkness. And hence there seems no truth in the idea that there can be a night due to the rotation of the earth. Similar is the case with seasonal changes. It has been believed in the modern system that the sun rays falling on the earth are of two forms, one straight and the other slanting. The straight rays cover less area and hence make summars, while the slanting ones occupy more area and hence make winters. But a sensible man would find no just in the said ides. The reason is that the sun rays are always warm and hence they could not be expected to give coldness in any form. And hence there should be some other cause both for dark nights and winters.

A deep study of Jinas system tells us that besides the said

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

group of planets, there is also a planet named 'rahu'. The rahu is not only dark but also cold in nature. These are the rays of the Rahu which come to our earth to make nights and cold seasons. This idea is well supported by the phenomenon that the longer nights mean a cold season. When the rahu remains for a longer period than the sun, the duration of night is longer in comparison with that of the day. It means that the supply of darkness or cold is more than the light or heat. And thus we find only in jinas system a satisfactory solution of the problem of seasons etc., while no such possibility is made out in assuming the earth a revolving body.

A study of Triloka pragypti chapter 7 tells us that the teachings of Jinas regarding the phases of the moon could not reach the author. The result was he could not put any definite solution of the problem and simply made a guess that either the rahu causes the phases or it is the nature of the moon which makes varying phases. But the diameter of the moon being less than that of the rahu and its situation being above the rahu, it is always beyond expectations that the rahu would allow the visibility of darker ring of the moon. As regards the natural effect, it can never be imagined if the real moon might be darker. And hence it is just to hold that the phases are made only on lunar image. This idea is well supported by the phenomenon the fade part of the moon equals its duration in day timeand bright one equals its duration in night. It clearly indicates that on new moon (amāvasa) the lunar rays enter wholly the atmospheric surface at bright zone and therefore the brightness of the sun makes the brighteness of

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

the lunar image fede, while on full moon (purṇamāshī) the rays enter the surface wholly at dark zone resulting the lunar image totally bright; but on the other days of the month the rays enter the two zones partly which makes the image too partly dark and partly bright. It should be noted here that it is only the Jinas system which need not any hypothesis to be made helps the man in finding out a genuine cause of lunar phases, otherwise the modern system does not see any relation into phases and duration of lunar image in day and night. This phenomenon requires attention of both the Jains and other astronomers.

Similar is the case with lunar or solar eclipses. The Jinas told the sun and the moon the rulers of other 'Jyotishis'. Also a scientific study of their natures does not find any reason why the two should become dark in any case. In the circumstance it is always a just to think that only their images are eclipsed. This happens due to the entrance of their rays at a zone different than the usual one, which causes their visibility in an either way than the usual ones. On the other hand the astronomers held the moon in revolution around the spherical earth to make the possiblty of eclipses, otherwise this idea does not seem to be justified more particularly when the apparent motion of the moon resembles to that of the sun. They ignored the fact that the rays of the sun do not travel straightwards in atmospheric dome to support their system of eclipses. It might be argued here that it is only the system of the modem astronomers which predicts the eclipses more accuarately and in old concept the said prediction was

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

errorful. Here it should be noted that the prediction of eclipses does not depend the least upon the idea how the eclipses are caused, but it depends entirely on the reading of the positions of lunar and solar images. The images of the two become in one particular position after a nearly constant period. The value of the said period was determined also by ancient astronomers, but due to some wrong in their result their predictions differ a bit. While the modern observer found out the said value, 18 years and 11.1/3 days, more accurately, which enabled them in making an accurate prediction. The fact is that the eclipses of the same series are repeated after the said interval and therefore one who keeps a record of previous eclipses can very well predict coming ones. This is the secret behind the predictions, otherwise it metters nothing if the earth objects the sunlight to reach the moon or the moon hides the sun to reach the light on the earth. The ancient astronomers who had no faith in spherical shape of the earth could as well predict the eclipses. The answer of the question why the images of the two become in one particular position after the prescribed period, is that it happens due to the natures of the solar and lunar orbits of revolution. As mentioned earlier, their heights from the earth are though constant but their distances do very in different orbits of different measures. And thus the system of the Jinas is perfect in all aspects to solve problems of this nature or the other more convincingly.

We are lucky enough to live in this age of so-called space flights. It provides us an opportunity to weigh the truth of

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'karma' theory. According to it we all are surrounded by such karmas which caused our birth on this earth and by the time they do not complete their duration, we can neither leave our bodies nor we can leave this earth. But the moon lies in a zone called the 'Devaloka' and hence it is impossible for the man of this earth to reach it with his body. While we hear a story that a few men have landed on the luner surface and brought the samples of moon structure with them. The man of this age keeps faith only in scientific solution of the problem and therefore it is better to judge the truth of lunar conquest in a pure scientific way.

According to the modern concepts of atom, the atoms of various chemical elements are composed of three types of particles, called the Electrons-Protons and Neutrons. Though it is not possible to split an atom into it elementry particles and weigh them seperately, but the Nuclear physicists have, however, determined mass of each particle. The mass of any particle is believed convertible into energy. Einstein established a relation into mass and energy. He said that the energy equals mass times the square of velocity of light (E = m C 2) Accordingly an amu gives 931 MeV of energy. It is also a fact that we utilise atomic energy in producing electricity and driving giant ships etc. But this idea has never been practically proved correct that entire mass of an atom is convertible into energy, nor it can ever be done so. The reason is that each and every thing in the universe should not be a form of energy alone. Had it been so a heap of coal or a litre of petrolium was to be converted

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

into energy as whole and nothing was to be left behind in shape of 'ash'. Further we should not have even imagined that the atmosphere of the earth reaches only a few hundred miles out beyond. And hence it is evident that the things on our earth do not contain only particles of energy alone, but they are made of two types of particles, one of energy and the other container of energy. If we set a thing on fire, we see that the energy moves up and the ash falls on the earth. It shows that the earth attracts only the ash and does nothing with the energy. In the circumstance it is clear that the heavenly bodies do not possess any attraction towards the ash and hence presence of chemical elements in the said bodies is always beyond expectations. The earth always keeps its atmosphere or ashparticles tight with it and does not allow its escape at any cost. and thus it can not be believed that the man could apply a force greater than that of the gravitational force of the earth to push his body or other craft etc. out beyond the atmospheric dome. Nor the surface of moon seems to be suitable to bear the mass of them in absence of ash.

We have been told that the element brought by the astronauts is Titanium, numbering at 22 on the periodic Table. But in absence of ash there can be no chemical element present in the heavenly bodies. In such a case the fact seems that the wrong idea of man towards the shape of the earth forced him to adopt a curved path in course of his flight. The result was that he again landed on the very earth where he flew from. That part of the earth is unknown and lies in

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

North-West of Bhartashetra. This is the reason he succeeded in bringing Titanium back to his native land. As regards the pictures taken by him in course of his flight and from the place he landed upon, though have been told of our earth, but there seems no truth in such talks for so many reasons. Firstly the pictures show the earth a spherical body, but the presence of water on earth does not prove it so. Though the astronomers do believe that the Gravitational pull of the earth keeps the water tight with a round surface, but its flowing nature does not prove this idea correct. Had it been so, the surface of the water was also to be spherical and in such a case it was not possible to keep it in basins of various shapes. While the moon is a hemispherical body and therefore the said pictures should belong to it. It may be argued here that the pictures present a sight of earthly landscapes and therefore the same should belong to earth. But a deep study of the situation tells us that visibility of landscapes does not go in favour of the organisers of the flight. The reason is that the earth remains wrapped up in an airy atmosphere while the pictures have been told taken from the space (vaccum). Since the atmosphere does not allow the rays to travel straightway, a picture of the earth with its atmosphere could be, however, taken but a picture of the earth alone wit h its landscapes could not behave. On the other hand it is always within the expectations that a reflection of the earth falls in the lunar image and the spots of the image are in fact the landscapes of the earth. In such a case a scene of the flat earth

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

would be captured in photo of lunar image. Secondly no possibilty of nights or seasonal changes is made out in holding the earth a spherical body and therefore the pictures should not belong to our earth.

Above all, the text books of modern astronomy state that the earth seen from the moon would be nearly four times as large as the moon seems, when seen from the earth. The astronauts did witness the said statement and said that they noticed the earth nearly four times larger. The said statement is quite sufficient to falsify the story of lunar landing. The reason is that in the two observations the positions of the observer and the object would be entirely different. And hence the atmospheric effect would not allow the observer to see the earth and the moon in their proportionate sizes, but their visibility would depend upon the magnifying power of the dome. But the astronauts and the astronomers rely upon the principles of Ratio & Proportion even in the case when observer and the object lie in media of varying densities and say since the ratio into diameters of earth and moon is nearly 4:1 (7900 : 2160), the earth was found nearly four times larger. In the circumstance it can never be believed if the astronauts landed on the lunar fields and took photograph of the earth from there. The fact should be that they landed on some undiscovered part of the earth and density of air being less at that part due to the absence of man-made radiation, the size of the lunar image was found rather larger. The astronauts wrongly held the magnified size of the lunar image as our earth.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

It should be noted here that in the modern system of the world the earth at perihelion is nearly 30 lak miles nearer the sun than at aphelion. This difference is nearly 13 times the distance of moon from the earth at at mean. If we suppose that on covering a distance of 238000 miles the moon would be found 2160 miles wide, then we should also find the sun at perihelion nearly 28 thousand miles wide (2160 X13). But we do not notice such largeness in the solar image and hence there lies no truth in the belief that the moon would become 2160 miles wide globe after covering a distance of 238000 miles. In such a case the world may believe the story of lunar conquest to be true, but a sensible man can not even imagine if one can reach his destination on the basis of wrong figures regarding the distance and dimension.

It is evident by the discussions made in this article that the knowledge of the modern astronomers reaches only up to the negative photo print of the heavens and they do not know how far the heavenly bodies are and what nature do they possess. The Jinas did know this mentality of man and that is why they talked of two different views of determination of a certain thing. The two views are 'veohar' (apparent view) and 'nishche' (Real view). Apparent view relies upon the apparent nature of the object, which is always contrary to the real one. While the Real view does not accept the apparent situation but determines the real nature hidden behind the apparent one. The astronomers unfortunately rely upon apparent view and this is the reason we find numerous discrepencies in Jinas and modern systems of the world. In such a case the Jains should try to weigh the truthness of Jinas Teachings in a pure scientific way. There seems no reason as to why the Jains should fall shy in putting their system on International Level.

■■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

SOME VALUABLE PUBLICATIONS

THE PHILOSOPHY OF SENTENCE AND ITS PARTS : Dr. Veluri Subba Rao. 1969. 30.00

THE PARAMARAS : Dr. Pratipal Bhatia, 1969. 40.00

THE REPUBLICAN TRENDS IN ANCIENT INDIA : Dr. Shobha Mukerji, 1969. 28.00

PRESS AND POLITICS IN INDIA : Dr. Prem Narain, 1969. 35.00

HISTORY OF BIHAR : Dr. Shiv Govind Misra 1969. 24.00

INTRODUCTION TO INDIAN ART : Dr. Ananda K. Coomaraswamy. revised edition. 40.00

THE CAVE TEMPLES OF INDIA : James Burgess and James Fergusson. 125.00

BENGAL UNDER AKBAR AND JAHANGIR. An introductory Study in social history : Dr. Tapan Raychaudhuri. 32.00

INDIA'S NATIONAL WRITING : Saraswati Saran. 21.00

D. H. LAWARENCE AS CRITIC : Dr. Ileana Chura-Sazdanic. 30.00

THE PISACA LANGUAGES OF NORTH-WESTERN INDIA : George Abraham Grierson. 22.50

CLASSICAL INDIAN DANCE IN LITERATURE AND THE ARTS Dr. Kapila Vatsyayan. 60.00

INDIAN FOLK MUSICAL INSTRUMENTS : K. S. Kothari. 20.00

WHO'S WHO OF INDIAN MUSICIANS. 6.00

ANCIENT MALWA AND THE VIKRAMADITYA TRADITION : Dr. D. C. Sircar. 22.50

ECONOMIC HISTORY OF THE DECCAN : Dr. Dipakranjan Das. 35.00

THe CIVILISATION OF INDIA : Rene Grousset. 40-00

THE PEOPLE OF INDIA : Sir Herbert H. Risley. second revised edition by William Crooke. 60.00

PRAKIT PRAVESHIKA (Introduction to Prakrit) by Alfred C. Woolner, translated by Dr. Banarsidas Jain. 18.50

PALI LITERATURE AND LANGUAGE : Dr. Wilhelm Geiger, translated by Dr. Balakrishna Ghosh. 30.00

BANABHATTA : A Literary Study : Dr. Neeta Sharma. 23.00

CHARLES METCALFE IN INDIA : Ideas and Administration 1806-1835 : Dr. D. N. Panigrahi. 26.00

SOME ASPECTS OF MEDIEVAL GUJARAT : S. A. I. Tirmizi. 15.00

NOBILITY UNDER THE SULTANS OF DELHI : Dr. S. B. P. Nigam. 25.00

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

THE TRIBAL VILLAGE IN BIHAR A study in unity and extension : Dr. Sachchidananda.	24.00
THE AGRARIAN SYSTEM OF MOSLEM INDIA. A historical essay with appendices by W. H Moreland.	20.00
A GLOSSARY OF JUDICIAL AND REVENUE TERMS, AND OF USEFUL WORDS OCCURING IN OFFICIAL DOCUMENTS RELATING TO THE ADMINISTRATION OF THE GOVERNMENT OF BRITISH INDIA from the Arabic, Persian, Hindustani, Sanskrit. Hindi, Bengali Oriya, Marathi, Gujarati, Telegu, Karnata, Tamil, Malayalam and other languages compiled by H. H. Wilson, reprinted from edition of 1885.	100.00
THE STUDY OF THE SELF CONCEPT OF SANKHYA YOGA PHILOSOPHY by Dr. Francis V. Catalina.	15.00
THF POPULAR RELIGION AND FOLKLORE OF NORTHERN INDIA by William Crooke, new edition.	50.00
LIFE AND TIMES OF MALIK AMBAR by Dr. Radhey Shyam.	15.00
INDIAN THEISM. from the Vedic to the Muhammadan priod by Nicol Macnicol.	20.00
HOBSON-JOBSON. A GLOSSARY OF COLLOQUIAL ANGLO-INDIAN WORDS AND PHRASES. AND OF KINDRED TERMS, ETYMOLOGICAL, HISTORICAL, GEOGRAPHICAL AND DISCURSIVE, : Col. Henry Yule and A. C., Burnell.	75.00
THE KATHA SARIT SAGARA OR OCEAN OF THE STREAMS OF STORY, translated from Sanskrit by C. H. Tawney.	75.00
TUZUK-I-JAHANGIRI OR MEMOIRS OF JAHANGIR, translated by Alexander Rogers and edited by Henry Beveridge.	50.00
NATIONALISM IN INDIA AND OTHER HISTORICAL ESSAYS : Dr. Damodar P. Singhal.	30.00
WOMEN IN MUGHAL INDIA : Dr. Rekha Misra.	15.00
BHASA : A STUDY : Dr. A. D., Pusalker, with a foreword by Dr. A. Berriedale keith.	33.00
THE HINDI SENTENCE STRUCTURE IN THE WORKS OF TULSIDAS : Dr. Vladmir Miltner.	10.00
COINS OF MEDIEVAL INDIA Alexander Cunningham.	15.00
THE CHRONICLES OF THE PATHAN KINGS OF DEHLI : Edward Thomas, with supplement on the Revenue Resources of the Mughal Empire.	45.00
ORIGIN AND DEVELOPMENT OF VAISNAVISM : Dr. Suvira Jaiswal.	25.00

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

AMERICAN MISSIONARIES AND HINDUISM. A study of their contacts from 1813 to 1910 Dr. Sushil Madhav Pathak. 25.00

THE BHUMIJ REVOLT. Ganga, Narain's Hangama or Turmoil by Dr. Jagdish Chandra Jha. 20.00

HISTORY OF INDIAN AND EASTERN ARCHITECTURE : by the late James Fergusson, revised and edited with additions. by James Burgess and R. Phene Spiers. 100.00

MODERN RELIGIOUS MOVEMENTS IN INDIA : J. N. Earquhar. 25.00

HISTORY OF FIRUZSHAH TUGHLUQ : Dr. Jamini Mohan Banerjee. 20.00

SANSKRIT SYNTAX : by Dr. Irach J. S. Taraporewala, 15.00

THE PHILOSOPHY OF VALLABHACHARYA : Dr. Mrdulal. Marfatia. 25 00

A GRAMMAR OF THE HINDUSTANI OR URDU LANGUAGE : John T. Platts. 25.00

A RECORD OF THE BUDDHIST RELIGIOUN AS PRACTISED IN INDIA AND THE MALAY ARCHIPELAGO AD 671-665 by I-Tsing, translated by J. Takakusu. 20.00

A COMPARATIVE GRAMMAR OF THE MODERN ARYAN LANGUAGES OF INDIA : John Beames, with Hindi, Punjabi, Sindhi, Gujarati, Marathi, Oriya and Bengali, three Parts in one volume. 50.00

STUDIES IN EARLY BUDDHIST ARCHITECTURE OF INDIA : by H. Sarkar. 30.00

NAIGEYASAKHANUKRAMANI : belonging to the Samaveda by Dr. S. R. Sehgal. 20·00

SOCIAL LIFE IN NORTHERN INDIA AD 600-1000 by Dr. Brijnarain Sharma. 25.00

MARWAR AND THE MUGHAL EMPERORS AD 1526-1748 : Dr. V. S. Bhargava. 15.00

THE CONCEPT OF DHARMA IN VALMIKI RAMAYANA : Dr. Benjamin Khan. 20.00

CONTEMPORARY INDIAN PHILOSOPHY : by Rama Shanker Srivastava. 20.00

EXPANSION OF INDO-ARYAN CULTURE during the Pallava rule : Dr. B. Ch. Chhabra. 15.00

THE SANSIS OF PUNJAB. A gypsy and cenotified tribe of Rajput origin : Sher Singh 'Sher'. 25.00

THE SCIENCE OF LANGUAGE : Max Muller. 20.00

ESSAYS ON SANSKRIT LITERATURE : Prof. Sadhu. 10.00

THE IRON AGE IN INDIA : N. R. Banerjee. 35.00

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

MEDIEVAL MALWA. A political and cultural history 1401-1562 by Dr. Upendra Nath Day. 30.00

THE CLASSICAL DOCTRINE OF INDIAN MEDICINE : ITS ORIGINS AND GREEK PARALLELS : J. Filliozat, translated from the French by Dr. Devraj Chanana. 25.00

THE JAINA SOURCES OF THE HISTORY OF ANCIENT INDIA 100 BC-AD 900 : Dr. Jyoti Prasad Jain. 20.00

THE RAMAYANA—A LINGUISTIC STUDY : Dr. Satya Vrat, 25.00

A SHORT HISTORY OF SANSKRIT LITERATURE by prof. Hans Raj Aggarwal, second revised. 10.00

THE HISTORY OF SUICIDE IN INDIA—An introduction : Dr. Upendra Thakur. 15.00

THE SECRETARY OF STATE FOR INDIA AND HIS COUNCIL 1858-1919 : Dr. Shacheeniwas Singh. 15.00

SOCIO-RELIGIOUS, ECONOMIC AND LITERARY CONDITION OF BIHAR : Dr. Bhagawati Sharan Verma. 20.00

VEDIC INDIA as embodied principally in the Rgveda by Zenaide A. Ragozin. 20.00

A HISTORY OF SANSKRIT LITERATURE : Arthur A. Macdonell. 20.00
Students Edition. 5.00

CRITICAL STUDIES IN THE PHONETIC OBSERVATIONS OF INDIAN GRAMMARIANS : Dr. Siddheshwar Verma. 20.00

R G BHASYA SANGRAHA : Dr. Devraj Chanana. 10.00

FOOD AND DRINKS IN ANCIENT INDIA : Dr. Om Prakash. 30.00

HELLENISM IN ANCIENT INDIA by Dr Gauranga Nath Banerjee, third thoroughly revised edition. 20.00

INDIA—WHAT CAN IT TEACH US ? by Max Muller, Indian edition by K. A. Nilakanta Sastri. 10.00

ON YUAN CHWANG'S TRAVELS IN INDIA AD 629-645 : Thomas Watters, edited after his death by T. W Rhys Davids and S. W. Bushell, Smith. 40.00

A MANUAL OF SANSKRIT PHONETICS : C. C. Uhlenbeck, 12.50

KALHANA'S RAJATARANGINI or Chronicles of the Kings of Kashmir Dr. M. A. Stein. Vol. I. 75.00

THE PALAEOGRAPHY OF INDIA (Bharatiya Prachin Lipimala) Late Gaurishankar Hirachand Ojha. 75.00

BHASA'S BALACHARITAM : Dr. S. R. Sehgal, 12.50

HISTORY OF INDIAN EPISTEMOLOGY : Dr. Jwala Prasad. 25.00

MUNSHIRAM MANOHARLAL

ORIENTAL AND FOREIGN BOOKSELLERS & PUBLISHERS

Post Box 1165, Nai Sarak, Delhi-6, India

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान की उपेक्षित शाखाओं का अध्ययन

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

पिछले वर्ष अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के अवसर पर ११ अक्तूबर को भारतीय ज्ञानपीठ के तत्त्वावधान में वाराणसी में 'जैन साहित्य संगोष्ठी' का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर ज्ञानपीठ पत्रिका का एक विशेषांक भी 'जैन साहित्य संगोष्ठी स्मारिका' के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इस में जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुसन्धान आदि से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण एवं दुर्लभ सामग्री दी गयी है। यह एक ऐसा प्रसंग था जिस ने जैन विद्याओं के अध्येताओं को एक अवसर दिया कि वे एक साथ मिल-बैठ कर जैन विद्या के अध्ययन-अनुशीलन आदि से सम्बन्धित विविध पक्षों पर सामूहिक रूप से विचार-विनिमय करें और निष्कर्ष निकालें। विद्वानों ने समय के इस आह्वान को जिस उत्साह से स्वीकारा उसी का सुफल था कि पहली बार वाराणसी में प्राच्यविद्या सम्मेलन के प्राकृत और जैनिज़्म विभाग में तीस से अधिक निबन्ध आये।

संगोष्ठी के उपरान्त सागर में वर्णी स्नातक परिषद् के तत्त्वावधान में १ जून से २१ तक स्नातक शिविर का आयोजन किया गया। निश्चय ही संगोष्ठी के बाद यह एक अगला क़दम माना जायेगा।

राजकीय सहायता के बिना आयोजित होने वाले ये दोनों ही ऐसे प्रयत्न थे जिन से जैन विद्याओं के अध्येताओं को नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई। और उसी का परिणाम है कि शिविर में सम्मिलित हुए स्नातकों ने भारत तथा विदेशों में मानविकी और विज्ञान (Humanities and Sciences) से सम्बन्धित जैन विद्याओं के अध्ययन-अनुसन्धान में सक्रिय रूप से रत विद्वानों, शोधार्थियों एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थाओं में पारस्परिक सम्पर्क सहयोग एवं शोध प्रवृत्तियों को गति देने के उद्देश्य से 'जैनालॉजिकल रिसर्च सोसाइटी' की स्थापना का निर्णय लिया।

यह एक कटु सत्य है कि लम्बे अरसे तक भारतीय साहित्य और सांस्कृतिक उपादानों के एक बहुत बड़े भाग का अध्ययन उपेक्षित रहा आया। और वह भाग है जैन वाङ्मय और संस्कृति का। कारण जो भी रहे, किन्तु इस का परिणाम यह हुआ कि एक पूरी शताब्दी तक अध्ययन करने के बाद भी हम अपने प्राचीन साहित्य और संस्कृति की पूरी जानकारी तक प्राप्त नहीं कर पाये। किसी भी समाज और राष्ट्र के लिए इस से अधिक दुर्भाग्यपूर्ण बात और क्या हो सकती है कि उसे अपनी विरासत तक का पता न हो।

इधर कुछ समय से विद्वानों का लक्ष्य इस ओर गया है और यह महसूस किया जाने लगा है कि सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय और सांस्कृतिक उपादानों का अध्ययन हुए बिना हमारी जानकारी अपूर्ण है, अपर्याप्त है। यही कारण है कि पिछले पन्द्रह वर्षों में जैन वाङ्मय और संस्कृति के अध्ययन की ओर अनेक जैन-जैनेतर विद्वानों का ध्यान गया है। ज्ञान-विज्ञान की इन उपेक्षित शाखाओं का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। सच तो यह है कि जब भी हम जैन वाङ्मय और संस्कृति के अध्ययन-अनुशीलन की बात करते हैं, हमारा अभिप्राय वाङ्मय और संस्कृति की उन शाखा-प्रशाखाओं से होता है जिन का अध्ययन अनेक कारणों से उपेक्षित रहा आया, किन्तु भारत के सांस्कृतिक इतिहास के लिए जिन का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। उन सब विधाओं की महत्ता पर प्रकाश डालना विद्वानों के समक्ष आवश्यक नहीं। वे उन की उपयोगिता और महत्ता को स्वयं जानते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि जो विद्वान् भारत तथा विदेशों में इस प्रकार का अध्ययन-अनुशीलन कर रहे हैं या करना चाहते हैं उन सब में पारस्परिक सम्पर्क सहयोग बना रहे, उन की कठिनाइयों का निराकरण हो सके तथा शोध उपलब्धियों की जानकारी यथासमय विद्वत्समाज तक पहुँचती रहे। अध्ययन-अनुसन्धान के क्षेत्र से जो व्यक्ति सम्बद्ध हैं वे इस विषय की कठिनाइयों को जानते हैं।

शोधकार्य अध्ययन की एक वैज्ञानिक पद्धति है। वास्तविक शोधार्थी जब किसी विषय पर अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ करने का विचार करता है, उस का अभिप्राय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस विषय से सम्बन्धित परिपूर्ण जानकारी प्राप्त करने और उस का पर्यालोचन कर के निष्कर्ष निकालने का होता है। इस लिए वह उस विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण सन्दर्भ सामग्री संग्रहीत करता है, उसे जाँचता-परखता है और निष्कर्ष निकालता है। इस के लिए उसे पर्याप्त साधन सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। अनुसन्धान कार्य चाहे किसी विश्वविद्यालयीय उपाधि के लिए हो चाहे बिना उपाधि की आकांक्षा के, दोनों ही स्थिति में ये वातें समान रूप से सत्य हैं।

विश्वविद्यालयीय उपाधियों के लिए शोधार्थी के समक्ष सर्वप्रथम विषय चयन और निर्देशक की समस्या आती है। दुर्भाग्य से जैन विद्याओं के अध्ययन के लिए भारत के एक भी विश्वविद्यालय में स्वतन्त्र विभाग नहीं है, जहाँ शोधार्थी को उपयुक्त निर्देशक सहज प्राप्त हो सके। इस लिए शोधार्थी किसी भी अन्य विभाग में जाता है जहाँ वहुत वार होता यह है कि शोधार्थी जिस विषय पर शोध कार्य करना चाहता है उस के लिए उपयुक्त निर्देशक उपलब्ध नहीं होता और जो निर्देशक उपलब्ध होता है वह अपनी रुचि के विषय पर कार्य कराना चाहता है। ये दोनों ही वातें अनुचित हैं और शोध कार्य के लिए बहुत बड़े व्यवधान हैं। परामर्शदाता या निर्देशक को स्वतः विषय-चयन में शोधार्थी की सहायता करनी चाहिए, उसे प्रोत्साहित करना चाहिए और उस के स्वयं के प्रति आस्था उत्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार शोधार्थी जिस विषय का चुनाव करेगा उस के प्रति उस की गहरी आत्मीयता होगी और उस पर वह पूरी लगन और उत्साह के साथ अनुसन्धान कार्य कर सकेगा।

वास्तव में विषय का चुनाव शोधार्थी को अपनी रुचि, पूर्व अध्ययन तथा कार्यक्षमता को ध्यान में रख कर स्वयं ही करना अधिक उपयुक्त है। चुनाव करते समय वह अपने विद्वान् मित्रों, गुरुजनों या निर्देशक का परामर्श ले, किन्तु उसे ऐसा करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि विषय का चुनाव वह अपने अध्ययन के लिए कर रहा है, परामर्शदाता के लिए नहीं। प्रायः यह देखा जाता है कि शोधार्थी परामर्श से इतना अभिभूत हो जाता है कि वह अपनी रुचि, पूर्व अध्ययन तथा कार्यक्षमता को बालाए ताक रख कर विषय निर्धारण कर लेता है। जिस से उसे अन्त तक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरी कठिनाई साधन सामग्री अर्थात् पुस्तकों आदि की है। अभी तक किसी भी विश्वविद्यालय का पुस्तकालय इस दृष्टि से समृद्ध नहीं है जो जैन विद्याओं के अध्येता को पर्याप्त पुस्तक सुविधा प्राप्त करा सके इस लिए शोधार्थी को विशेष कठिनाई उठानी पड़ती है। इस विषय में मेरा विनम्र सुझाव है कि एक ओर शोधार्थी को सम्पूर्ण रूप से मात्र अपने फार्मल निर्देशक पर निर्भर न रह कर अपने विषय के विशिष्ट अध्येताओं से सम्पर्क कर के उन का मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। दूसरी ओर जैन विद्याओं के वरिष्ठ अध्येताओं को उदारतापूर्वक ऐसे शोधार्थियों का मार्गदर्शन करना चाहिए। ऐसा करने से न केवल शोध कार्य को सही दिशा प्राप्त होगी प्रत्युत विषय की पुनरावृत्ति रुकेगी और शोध के स्तर की भी रक्षा हो सकेगी।

विश्वविद्यालयीय उपाधि प्राप्त करने के बाद बहुत से अनुसन्धाता ऐसे कार्य-क्षेत्र में पहुँच जाते हैं जहाँ न तो उपयुक्त साधन रहते हैं न उचित वातावरण। ऐसी स्थिति में वे अपने कार्य को आगे नहीं बढ़ा पाते। और उस के लिए छटपटाते रहते हैं। मैं उन लोगों की बात नहीं करता जो अपनी डाक्टरेट की कमाई को ही जीवन भर भुना कर खाते रहते हैं। कुछ ऐसे व्यक्ति अवश्य होते हैं जिन के मन में बाद में भी कार्य करने की लगन होती है और उत्कट अभिलाषा भी। ऐसे अनुसन्धाताओं को परस्पर सहयोग से कार्य करने के लिए प्रेरित करना हम सब का दायित्व है।

इस प्रसंग में एक बात और भी विशेष ध्यान देने की है। डाक्टरेट के बाद शोध कार्य जारी रखने वाले अनुसन्धाताओं के शोध कार्य में भी प्रायः एकसूत्रता और तरतमता नहीं देखी जाती। वह कभी किसी विषय पर लिखता है, कभी किसी विषय पर।

वास्तव में डाक्टरेट तो अनुसन्धान कार्य करने की एक ट्रेनिंग है। सही शोध तो उस के बाद प्रारम्भ होती है, जब न उपाधि का मोह होता है न प्रबन्ध को पूरा करने की जल्दीबाज़ी। मेरी समझ से प्रत्येक अध्येता को अपने अध्ययन की एक सुविचारित योजना बनाना चाहिए, जिस में मौक्तिक माला के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्ताओं की तरह प्रत्येक इकाई में भी पूर्णता और बहुमूल्यता हो तथा एक सूत्र में पिरोये जाने पर उस की गरिमा तथा बहुमूल्यता और अधिक बढ़े।

व्यक्तिगत अध्ययन की सुविचारित योजनाओं में से ही टीम वर्क की संभावनाएं प्रस्फुटित होंगे। जो अकेले अपने अध्ययन को भी सुनियोजित नहीं कर सकते उन से सहयोगी प्रयासों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अभी जैन विद्याओं के क्षेत्र में इतना अधिक कार्य करना शेष है कि प्रत्येक अध्येता को अदम्य उत्साह और सम्पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य में जुट जाना चाहिए।

जैन विद्याओं के अध्ययन को प्रोत्साहन और गति देने के लिए ये ऐसे प्रयत्न हैं जिन्हें अनुसन्धाता स्वतः कर सकते हैं। न इन के लिए राजकीय अराजकीय अनुदान की आवश्यकता है और न विश्वविद्यालयों में घुसपैठ की।

विश्वविद्यालय या कालेज के स्तर पर जैन विद्याओं के अध्ययन के प्रचार-प्रसार का प्रश्न दूसरा है। इस के लिए सर्वथा भिन्न प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता है। कोल्हापुर और पूना में आयोजित प्राकृत सेमिनार के निष्कर्षों के रूप में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को जो सुझाव दिये गये हैं, वे इस दिशा में मूल आधार माने जा सकते हैं। किन्तु मात्र सुझाव दे देने से काम नहीं चलेगा उन के कार्यान्वयन के लिए भी प्रयत्न आवश्यक हैं।

इन के अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों आदि की पाठ्यक्रम एवं व्यवस्था समिति में जिन व्यक्तियों की रुचि जैन विद्याओं के अध्ययन में है उन्हें इन के अध्ययन की स्वतन्त्र व्यवस्था के लिए संचालकों को निरन्तर प्रेरित करते रहना चाहिए।

इस दिशा में एक प्राथमिक प्रयत्न यह हो सकता है कि सर्वप्रथम जैन शिक्षा संस्थाओं के संचालक अपनी संस्थाओं में जैन विद्याओं के अध्ययन की शुरूआत करें तथा सम्बद्ध विश्वविद्यालय से उस का रिकग्नीशन करायें।

शोध उपलब्धियों के प्रकाशन का प्रश्न भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। जब तक उन का प्रकाशन नहीं होता न तो उन का समुचित मूल्यांकन हो सकता है न ही उन से लाभान्वित हुआ जा सकता है। डॉक्टरेट के लिए अब तक लिखे गये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रबन्धों में अस्सी प्रतिशत अप्रकाशित हैं। विभिन्न सेमिनार-सम्मेलनों आदि में जो निबन्ध पढ़े गये उन में से भी न के बराबर प्रकाशित हुए हैं। मैं यह नहीं कहता कि अनुसन्धान के नाम पर जो कुछ लिखा जाता है वह सब उच्चकोटि का होता है पर यह अवश्य है कि शोध कार्य के प्रकाशित न होने से शोधकर्ता अत्यधिक हतोत्साहित होता है और आगे कार्य करने का उस का मनोबल नहीं बनता।

इस समय एक भी जरनल ऐसा नहीं है जो पूर्ण रूप से जैन विद्याओं विषयक अनुसन्धान कार्य को समय पर और समुचित रूप में प्रकाशित कर देश-विदेश के विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करता हो। अतएव ऐसे जरनल को महती आवश्यकता है।

जैन विद्याओं से सम्बन्धित साहित्य को प्रकाशित करने वाली संस्थाएँ भी गिनी-चुनी हैं। उन में से अधिकांश के समक्ष न तो सुचिन्तित योजना है न प्रकाशन को गति देने के समुचित प्रयत्न। जब जो सामने आ जाता है उसे किसी तरह देर-सवेर निकाल देते हैं। विद्वानों का यह दायित्व है कि प्रकाशन संस्थाओं को योजनाबद्ध रूप में कार्य करने की प्रेरणा दें। जो विद्वान् ऐसी संस्थाओं से सम्बद्ध हैं उन की तो और अधिक ज़िम्मेदारी है कि वे कार्य को सही दिशा दें।

ये कुछ ऐसी मूलभूत बातें हैं जिन पर जैन विद्याओं के प्रत्येक अध्येता को विचार करना चाहिए और अपने-आप से पूछना चाहिए कि वह स्वयं इस दिशा में क्या प्रयत्न कर रहा है। यदि हम वर्ष भर में एक बार भी अपना पर्यालोचन कर लें कि साल भर में हम ने स्वयं कितना कार्य किया, दूसरों को कितनी प्रेरणा और सहयोग दिया तथा दूसरों ने जो कार्य किया है उस में से कितने का मूल्यांकन किया, तो निश्चय ही हमारी अन्तरात्मा ही कार्य करने की अदम्य प्रेरणा देगी। यदि हम इतना भी कर सके तो इस में सन्देह नहीं कि जैन विद्याओं के अध्ययन को सही दिशा और गति दे सकेंगे। और इस प्रकार प्राच्य-विद्याओं की उपेक्षित शाखाओं का अध्ययन भारत के सांस्कृतिक इतिहास के लिए न केवल प्रभूत सामग्री प्रस्तुत करेगा प्रत्युत अनेक अजाने-अबूझे तथ्यों को भी उद्घाटित करेगा।

○ ○

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत अंक

जैन साहित्य संगोष्ठी के अवसर पर प्रकाशित ज्ञानपीठ पत्रिका के विशेषांक को पाठकों तथा विद्वानों ने जितना सराहा और उपयोगी पाया, उस से यह अंक प्रस्तुत करने की प्रेरणा मिली। इस अंक में यह प्रयत्न किया गया है कि भारतीय विद्या की उपेक्षित शाखाओं—विशेष कर जैन वाङ्मय और संस्कृति से सम्बन्धित शोध कार्य की आधारभूत सामग्री प्रस्तुत की जा सके।

'विश्वविद्यालयों में जैन वाङ्मय का अध्ययन' शीर्षक के अन्तर्गत संग्रहीत सामग्री से जहाँ एक ओर यह जानकारी प्राप्त होती है कि समुचित सुविधाओं के अभाव में भी कार्य में निरन्तर प्रगति हो रही है, वहीं यह भी ज्ञात होता है कि एक-एक विषय पर कई-कई अनुसन्धाताओं ने एक ही दृष्टि से अनुसन्धान कार्य किया है। इस का एक बड़ा कारण शोधकार्य की सूचनाओं का अभाव तथा शोध प्रबन्धों का अप्रकाशन है। शोधार्थी या निर्देशक दोनों में से यदि एक को भी ये सूचनाएँ रहें कि अमुक विषय पर किस दृष्टि से कितना कार्य हो चुका है तो निश्चय ही पुनरावृत्ति को रोका जा सकता है।

'विश्वविद्यालयों में जैन विद्याओं की अध्ययन व्यवस्था' के अन्तर्गत दिया गया विवरण एक सखेद आश्चर्य की प्रतीति कराता है कि भारत के अर्धशतक विश्वविद्यालयों में से एक भी विश्वविद्यालय ऐसा नहीं है जिस में प्राकृत तथा जैन वाङ्मय के अध्ययन-अनुसन्धान की व्यवस्था प्राक् विश्वविद्यालय कक्षा से ले कर डाक्टरेट तक हो।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने अपने संक्षिप्त निबन्ध 'प्राचीन परम्परा की संस्थाओं में जैन विद्या का अध्ययन' में एक ओर यह बताया है कि श्रुत परम्परा से प्राप्त ज्ञान की परम्परा हज़ारों वर्षों के अन्तराल के बाद भी क्रमशः मुनि और भट्टारकों की परम्परा और अन्य विद्यालयों के माध्यम से अनवरत चली आयी। दूसरी ओर यह भी स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया है कि इन संस्थाओं में तुलनात्मक तथा विषय क्रम से अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है।

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने हिन्दी साहित्य में अनुसन्धान की समस्याओं पर संक्षेप में बहुत ही गहराई से विचार प्रस्तुत किये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन का निबन्ध यह सोचने की ही सामग्री नहीं देता कि केवल मानविकी ही नहीं विज्ञान से सम्बन्धित विषयों की तुलना में भी प्राचीन वाङ्मय का अध्ययन आवश्यक है, प्रत्युत गणित जैसे दुरूह विषय पर कार्य करने के आधार भी देता है।

डॉ० आ० ने० उपाध्ये का निबन्ध जैन विद्या पर शोध कार्य करने वालों के लिए आकाश दीप का कार्य करेगा।

'अप्रकाशित शोध प्रबन्ध' शीर्षक के अन्तर्गत जिन शोध प्रबन्धों का परिचय प्रस्तुत है उन से उन प्रबन्धों की विषय सामग्री का आभास तो मिलता ही है उन की उपलब्धियों के मूल्यांकन की ओर भी उत्सुकता जागती है।

'संगोष्ठी-सेमिनार' के अन्तर्गत प्रस्तुत डॉ० हीरालाल जैन के सुझाव गंभीर रूप से विचार करने को बाध्य करते हैं। वहीं, प्राकृत सेमिनार तथा स्नातक-शिविर के विवरण इस बात के उद्घोष हैं कि भारतीय विद्या की उपेक्षित शाखाओं के व्यापक अध्ययन के लिए विद्वान् अब पूर्णतः जागरूक और सचेष्ट हैं तथा शक्ति भर गति देने के लिए प्रयत्नशील भी।

'अपभ्रंश कोश : आवश्यक या अनावश्यक' शीर्षक के अन्तर्गत डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री द्वारा प्रस्तुत सामग्री जितनी विचारोत्तेजक है उतनी ही सुखद आश्चर्यकर कि एक अकेला व्यक्ति अपभ्रंश कोश के निर्माण में जुटा है।

श्री ज्ञान भारिल्ल का इण्टरव्यू अध्ययन-अनुसन्धान से भिन्न एक और विधा की ओर प्राचीन साहित्य के अध्येताओं का ध्यान दिलाता है जिस के माध्यम से प्राचीन साहित्य जन-जन के अध्ययन का विषय बन सकता।

श्री ज्ञानचन्द जैन द्वारा प्रस्तुत विचारों से पूर्णतया सहमत न भी हुआ जा सके फिर भी यह निबन्ध एक बार झकझोरता अवश्य है कि हम अपने प्राचीन चिन्तन को सही रूप में समझें तथा आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में उस की सत्यता का परीक्षण करें।

अन्य सामग्री जैन विद्याओं के अध्ययन अनुसन्धान, सम्पादन-प्रकाशन से सम्बन्धित बहुमूल्य सन्दर्भ सूचनाएँ आदि प्रस्तुत करती है।

और यह तो विद्वानों और पाठकों के लिए ही रहे कि पत्रिका अपना यह विशेषांक प्रस्तुत करने में कितनी सफल रही। ■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे प्रकाशन

काशिका वृत्ति (पदमंजरी एवं न्यास सहित)
सम्पा० स्वामी द्वारिकादास शास्त्री एवं पं० कालिकाप्रसाद शुक्ल, छः खण्डों में ।
पुस्तकालय संस्करण १५०.००
साधारण संस्करण १२०.००

माधवीया धातुवृत्ति : सम्पा० स्वामी द्वारिकादास शास्त्री २०.००

अभिनव प्राकृत व्याकरण : डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री १५.००

प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास :
डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री २०.००

कच्चायन व्याकरण : श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी व श्री वीरबल शर्मा १५.००

सांख्यसूत्र अनिरुद्धवृत्ति : सम्पा० डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य २.००

अष्टाविंश उपनिषद् (गुटका) : सम्पा० स्वामी द्वारिकादास शास्त्री ३.००

योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त : डॉ० भीखनलाल आत्रेय १०.००

आगामी प्रकाशन

JAIN PHILOSOPHY OF NON-ABSOLUTISM
BUDDHIST PHILOSOPHY OF UNIVERSAL FLUX
PRAMĀṆA MĪMĀṄSĀ
Dr. Satkari Mukherji.

EVOLUTION OF HINDU MARRIAGES.

अद्वैत सिद्धि : म० म० पं० योगेशचन्द्र बागची

भाषावृत्ति : सं० स्वामी द्वारिकादास शास्त्री

तारा पब्लिकेशन्स

कमच्छा, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे यहाँ से प्रकाशित जैन तथा अणुव्रत साहित्य

जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान	मुनि श्री नगराज जी	४.००
अंक स्मृति के प्रकार	मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी	१.००
आधुनिक विज्ञान और अहिंसा	गणेश मुनि शास्त्री	३.५०
जैन कहानियाँ (दस भाग सचित्र)	मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी 'प्रथम'	१५.००
जनपद विहार—२	मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी 'प्रथम'	३.००
आषाढ़मूर्ति	आचार्य श्री तुलसी	२.५०
श्री कालू उपदेश वाटिका	" "	१२.५०
श्रद्धेय के प्रति	" "	२.२५
नैतिक संजीवन—१	" "	२.००
अग्निपरीक्षा (काव्य)	" "	६.५०
भरत-मुक्ति "	" "	८.००
मन्थन "	मुनि श्री बुद्धमल्ल जी	२.००
आवर्त "	" "	३.००
श्रमण संस्कृति के आँचल में	" "	३.००
अणुव्रत की ओर—१	मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी 'प्रथम'	२.००
अणुव्रत की ओर—२	" "	२.००
अंगड़ाई	मुनि श्री मोहन लाल जी 'शार्दूल'	१.५०
विश्व शान्ति और अणुव्रत	अनन्त मिश्र	१.००
तुलसी वाणी	मुनि श्री दुलीचन्द जी	१.५०
अन्तर्ध्वनि	मुनि श्री चन्दन मल जी	०.५०
विद्यार्थी और अणुव्रत	मुनि श्री दुलीचन्द जी	१.५०
महावीर और बुद्ध की समसामयिकता	मुनि श्री नगराज जी	३.००

शाखाएँ
हौज खास, नयी दिल्ली
२१, अशोकमार्ग, लखनऊ

आत्माराम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली-७

शाखाएँ
धमानी मार्केट, जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन भारतीय साहित्य के मानक ग्रन्थ

१

सिद्धान्त और कर्मग्रन्थ

महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग १-७ : आचार्य भगवन्त भूतवलि
सं० अनु० : [भाग १] पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर
[भाग २-७] पं० फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री ।

जैन धर्म के कर्मसिद्धान्त का सूक्ष्मतम विवेचन करने वाला महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थरत्न। दक्षिण भारत में प्राप्त एकमात्र ताड़पत्रीय प्रति से सम्पादित और अनुवादित। प्रथम भाग द्वि० सं०, शेष प्रथम संस्करण, सातों भागों की पृष्ठ-संख्या सुपर रायल २०४४। प्रत्येक भाग ग्यारह रुपये

कर्मप्रकृति [प्राकृत-हिन्दी] : नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती
सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री

जैन कर्मसिद्धान्त का विवेचन करने वाला गोम्मटसार की परम्परा में लिखित एक विशिष्ट ग्रन्थ। सरल हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम वार प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या ३२ + १६०। मूल्य छह रुपये

कर्मप्रकृति : मूल : अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती
सम्पा० : डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

यह एक लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण कृति है, जिस में सरल संस्कृत गद्य में जैन कर्म-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। डॉ० जैन ने पहली बार इस का सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद किया है। विषय के आधार पर सम्पादक ने पूरी कृति को छोटे-छोटे दो सौ वत्तीस वाक्य-खण्डों में विभाजित किया है। मूल्य दो रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वार्थराजवार्त्तिक [संस्कृत-हिन्दी] भाग १-२ : भट्ट अकलंकदेव
सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

जैन-तत्त्वज्ञान का स्पष्ट और प्रामाणिक विवेचन। अनेक ताड़पत्रीय प्रतियों के आधार से सम्पादित प्रामाणिक संस्करण। संक्षिप्त हिन्दी सार सहित। प्रथम संस्करण, दोनों भागों की पृष्ठ-संख्या सुपर रायल ९०२। मूल्य चौबीस रुपये

सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी] : आचार्य पूज्यपाद देवनन्दि
सं० अनु० : पं० फूलचन्द सिद्धान्त शास्त्री

आचार्य उमास्वातिकृत तत्त्वार्थ सूत्र पर सरल संक्षिप्त वृत्ति। अब तक प्रकाशित सर्वार्थसिद्धि के सभी संस्करणों से अधिक प्रामाणिक, अधिक उपादेय। महत्त्वपूर्ण हिन्दी प्रस्तावना और अनुवाद सहित। प्रथम संस्करण, पृष्ठ-संख्या ५३४।
मूल्य बारह रुपये

पंचसंग्रह [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात
सं० अनु० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

जैन दृष्टि से जीव और कर्म की विविध दशाओं का तलस्पर्शी, गम्भीर किन्तु सुगम और सरल विवेचन। महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रस्तावना तथा हिन्दी अनुवाद-सहित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ८६८। मूल्य पन्द्रह रुपये

जैनधर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]
संकलन-सम्पा० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों से संकलन, सम्पादन और हिन्दी अनुवाद। अनेक विषयों की एकत्र जानकारी। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज, पृष्ठ-संख्या ३६०। मूल्य तीन रुपये

जैन न्याय

जैन न्याय [हिन्दी] : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

जैन-न्याय के प्राचीन ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद सार रूप में हिन्दी में प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण कृति। प्रथम संस्करण, डिमाई, पृष्ठ-संख्या १६ + ३६८।
मूल्य नौ रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत] : विद्यानन्द
सम्पादन : डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

जैन-न्याय के सिद्धान्तों का संक्षेप में परिपूर्ण विवेचन करने वाली कृति। प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर सुसम्पादित, विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना और परिशिष्टों सहित प्रथम बार प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ ५६ + ३४ + ६२

मूल्य पाँच रुपये

सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत] भाग १-२ : भट्ट अकलंकदेव
सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

जैन-न्याय के प्रतिष्ठापक आचार्य भट्ट अकलंकदेव की लुप्तप्राय महत्त्वपूर्ण कृति का कच्छ से प्राप्त अनन्तवीर्यकृत संस्कृत टीका की एक मात्र पाण्डुलिपि से मूल ग्रन्थ का उद्धार, संशोधन और सम्पादन। जैन-न्याय के सिद्धान्तों का सांगोपांग विवेचन करने वाला अद्वितीय ग्रन्थ। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या दोनों भागों की ११३२।

मूल्य तीस रुपये

न्यायविनिश्चयविवरण [सस्कृत] भाग १-२ : अकलंकदेव : वादिराज सूरि, सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

जैन-न्याय और दर्शन के मूल सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन। मूल संस्कृत कारिकाओं की स्वयं अकलंकदेवकृत संस्कृत व्याख्या। हिन्दी प्रस्तावना में समस्त भारतीय दर्शनों का पर्यालोचन। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ संख्या दोनों भागों की ११३८।

मूल्य तीस रुपये

पुराण-साहित्य

आदि पुराण [संस्कृत हिन्दी] भाग १-२ : आचार्य जिनसेन
सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

जैन-धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित्र तथा भारतीय संस्कृति, विशेषतया जैन-संस्कृति के अनेक उपादानों का आकर ग्रन्थ। द्वितीय संस्करण, दो भागों में सुपर रायल साइज़ के लगभग १३५० पृष्ठ।

मूल्य बीस रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरपुराण [संस्कृत हिन्दी] : आचार्य गुणभद्र

सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

भगवान् आदिनाथ के अतिरिक्त २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण तथा तत्कालीन विशिष्ट राजाओं एवं पुण्यपुरुषों के जीवन वृत्त। द्वितीय संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ६६६। मूल्य दस रुपये

पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १-३ : आचार्य रविषेण

सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

जैन साहित्य में राम की प्रिय एवं प्रेरक कथा का चित्रण करने वाला सरस, सरल और लोकप्रिय ग्रन्थ, जिस में राम का ही नहीं राम-कथा के प्रत्येक पात्र का चरित निखरा है, निखरता गया है। प्रथम संस्करण, तीनों भागों की पृष्ठ-संख्या सुपर रायल १५५६। मूल्य तीस रुपये

पुराणसार संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १-२ : आचार्य दामनन्दि

सं० अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी

जैन-तीर्थंकर आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा वर्धमान का जीवनवृत्त। सरस संस्कृत और ललित हिन्दी अनुवाद। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या दोनों भाग ४४२। मूल्य चार रुपये

हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी] : आचार्य जिनसेन

सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

जैन-साहित्य में श्रीकृष्ण की प्रिय एवं प्रेरक कथा का वर्णन करने वाले इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण हरिवंश का परिचय तथा जैनधर्म और संस्कृति के उपादानों का स्पष्ट विवेचन तो किया ही गया है भारतीय संस्कृति और इतिहास की भी बहुविध सामग्री भरी पड़ी है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १००८। मूल्य सोलह रुपये

चरित और काव्य-ग्रन्थ

भोजचरित्र [संस्कृत] : राजवल्लभ

सम्पादन : डॉ० बहादुरचन्द्र छाबड़ा, एस० शंकरनारायणन्

परमार नरेश महाराज भोज के जीवन-चरित्र पर लिखित ऐतिहासिक महत्त्व का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक विशिष्ट काव्य। महत्त्वपूर्ण अँगरेजी प्रस्तावना तथा विवेचनात्मक टिप्पणों के साथ प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या २४ + १९२।

मूल्य आठ रुपये

करकंड चरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] : मुनि कनकामर
सम्पादन-अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन

जैन और बौद्ध परम्परा में प्रत्येक बुद्ध के रूप में प्रसिद्ध महाराज करकण्डु के जीवन पर लिखित एक ललित और महत्त्वपूर्ण कृति। हिन्दी-अँगरेजी प्रस्तावना, अनुवाद, विवेचनात्मक नोट्स तथा परिशिष्टों के साथ प्रस्तुत। द्वितीय संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ६४ + २७८।

मूल्य दस रुपये

पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] : महाकवि स्वयंभू
सं० अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

मानव-मूल्यों की सक्रिय चेतना का एक ऐसा ललित काव्य जिस में रामकथा का परम्परागत वर्णन होने पर भी शैली-शिल्प, चित्रांकन, लालित्य और कथावस्तु में अनेक विशेषताएँ हैं। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, चार भागों की पृष्ठ-संख्या लगभग १३५०।

मूल्य बारह रुपये

मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] : कवि हरिदेव
सं० अनु० : डॉ० हीरालाल जैन

मनुष्य की पाशविक वृत्ति पर परमात्म-वृत्ति की विजय का प्रतिपादन करने वाली प्रतीक शैली में निबद्ध, एक ऐसी ललित कृति जो भारतीय प्रतीक साहित्य के इतिहास में अपने ढंग की अद्वितीय रचना है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १७७।

मूल्य आठ रुपये

मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी] : कवि नागदेव
सं० अनु० : डॉ० राजकुमार जैन

मदन-पराजय की कथा को सरस, सरल संस्कृत में प्रस्तुत करने वाला प्रतीक काव्य। द्वितीय संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १४ + ५८ + १४४।

मूल्य छह रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी] : महाकवि हरिचन्द्र
सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

सरल गद्य और पद्य में निबद्ध वह जनप्रिय कथा जिस ने मध्ययुग के अनेक साहित्यकारों को संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओं में कथा कहने के लिए प्रेरित किया। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ३९८। मूल्य आठ रुपये

धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी] : महाकवि हरिचन्द्र
अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

संस्कृत धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य का सरस हिन्दी रूपान्तर जिस में मूल की आत्मा भी सुरक्षित है और कथा कहने की मौलिकता भी। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ३८०। मूल्य तीन रुपये

जातकट्ठकथा [पाली] भाग १ : आचार्य बुद्धघोष
सं० : भिक्षु धर्मरक्षित

प्रसिद्ध पाली जातक का देवनागरी संस्करण। भगवान् बोधिसत्त्व के जीवन से सम्बद्ध अनेक रोचक कथाओं का आकलन तथा भारतीय सांस्कृतिक सामग्री का संग्रह। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ४००। मूल्य नौ रुपये

सुगन्धदशमी कथा [पाँच भाषाओं में]
सम्पादन-अनुवादः डॉ० हीरालाल जैन

एक प्राचीन भारतीय लोक-कथा जिस के बीज प्राचीन भारतीय साहित्य तथा सागर-पार के साहित्य में भी मिलते हैं। अपभ्रंश, संस्कृत, गुजराती, मराठी तथा हिन्दी में लिखित सुगन्धदशमी कथाओं का एक महत्त्वपूर्ण संग्रह ग्रन्थ। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १८ + २६ + १०० + १६ + ५०।

मूल्य ग्यारह रुपये

जम्बूसामिचरिउ : मूल : वीर कवि
सम्पा० : डॉ० विमलप्रकाश जैन

वीर कवि कृत जम्बूसामिचरिउ विक्रम की ११वीं शती का एक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश ग्रन्थ है। इस संस्करण में यह सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० विमलप्रकाश जैन ने मूल अपभ्रंश के साथ ललित हिन्दी रूपान्तर तो दिया ही है, एक सौ अड़तालीस पृष्ठों की विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना में जम्बूस्वामी के जीवन चरित्र के बहुकोणीय अध्ययन से साथ ही साथ ग्रन्थकार और ग्रन्थ का विस्तृत समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिस में ग्रन्थ के महाकाव्यात्मक लक्षणों, विषय वस्तु से सम्बद्ध विभिन्न चरित्रों, विषय के अभ्यन्तरवर्ती उपाख्यानों, काव्य गुण, रीति, रस, अलंकार तथा कवि-द्वारा प्रयुक्त छन्द एवं भाषा, समसामयिक अवस्था आदि का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्राचीन भारतीय भाषाओं के अध्येता विद्वानों तथा साधारण पाठकों के लिए समान रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय कृति।

मूल्य पन्द्रह रुपये

गद्यचिन्तामणि : मूल : वादीभसिंह सूरि

सम्पादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

गद्यचिन्तामणि बाणभट्ट कृत कादम्बरी शैली पर लिखा गया एक विशिष्ट गद्य ग्रन्थ है। इस में वादीभसिंह सूरि ने प्रौढ़ संस्कृत में जीवन्धर का चरित्र निबद्ध किया है। जैन साहित्य में इस कथा को आधार बना कर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। उन सब में यह एक विशिष्ट एवं उच्चकोटि का ग्रन्थ है, जो संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद के साथ पहली बार प्रकाशित हुआ है।

मूल्य बारह रुपये

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

भद्रबाहुसंहिता [संस्कृत-हिन्दी] : आचार्य भद्रबाहु

सं० अनु० : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

भारतीय फलित ज्योतिष की बहुविध जानकारी देने वाला एक ऐसा ग्रन्थ जिसे पढ़ कर साधारण पाठक भी ज्योतिष का जानकार बन सकता है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या ४८०। मूल्य आठ रुपये

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि [संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात

सं० अनु० : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

ज्योतिष शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जिस में चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्योतिष के विविध विषयों का विवेचन किया गया है। परिशिष्ट में मुहूर्त निकालने, कुण्डली बनाने इत्यादि की भी जानकारी दी गयी है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १८२। मूल्य चार रुपये

करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात

सं० अनु० : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी

सामुद्रिक शास्त्र का लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, जिस में हस्तरेखाएँ बोलती हैं। तृतीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या ४८। मूल्य पचहत्तर पैसे

आचार-शास्त्र

उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी] : सोमदेव सूरि

सम्पादन-अनुवाद : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

यशस्तिलक चम्पू के अन्तिम तीन आश्वासों को सोमदेव ने उपासकाध्ययन नाम दिया है। इन में जैन श्रावकाचार का विवेचन है। पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री के सरल हिन्दी अनुवाद, विस्तृत महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना तथा परिशिष्टों के साथ यह संस्करण विशेष उपयोगी बन गया है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ११६+५३९। मूल्य बारह रुपये

वसुनन्दिश्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी] : आचार्य वसुनन्दि

सं० अनु० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

गृहस्थाचार का सांगोपांग विवेचन करने वाला ग्रन्थ जो केवल एक आचार संहिता ही प्रस्तुत नहीं करता प्रत्युत श्रावक धर्मों के क्रम विकास का एक परिपूर्ण इतिहास भी प्रस्तुत करता है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ संख्या २३०। मूल्य पाँच रुपये

पूजा और व्रत-विधान

सोलह कारण भावना [हिन्दी] : महात्मा भगवानदीन

दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का प्रसिद्ध चिन्तक महात्मा भगवान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीन द्वारा प्रस्तुत मौलिक विवेचन। प्रथम संस्करण, डबल क्राउन, पृष्ठ-संख्या ४+१५८।

मूल्य दो रुपये

ज्ञानपीठपूजांजलि [संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-हिन्दी]

संकलन-सं० : डॉ० आ० ने० उपाध्ये, पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी नित्य-नैमित्तिक पूजा-पाठ, स्तुति-स्तोत्र, आरती, भजन आदि का प्रथम वार प्रकाशित सर्वांगपूर्ण और प्रामाणिक संस्करण। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज, पृष्ठ-संख्या ५७८।

मूल्य पाँच रुपये

व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी] : सिंहनन्दि

सं० अनु० : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

जैन संस्कृति और आचार-संहिता में स्वीकृत विभिन्न व्रतों का परिचय, उन के पालन करने की विधि तथा उन की तिथि निकालने की प्रक्रिया का सरल भाषा में विवेचन करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज, पृष्ठ-संख्या २८०।

मूल्य तीन रुपये

व्याकरण

जैनेन्द्रमहावृत्ति [संस्कृत] : देवनन्दि, अभयनन्दि

सं० : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

आचार्य पूज्यपाद देवनन्दिकृत जैनेन्द्र व्याकरण पर आचार्य अभयनन्दि की विस्तृत वृत्ति। व्याकरण-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जो शाकटायन और पाणिनि की परम्परा में एक नयी कड़ी जोड़ता है। प्रथम बार प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ५६४।

मूल्य पन्द्रह रुपये

छन्दःशास्त्र

सभाष्य रत्नमंजूषा [संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात

सं० : हरिदामोदर वेलणकर

सूत्र पद्धति में लिखित छन्दःशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जो अपने भाष्य के साथ सच ही रत्नमंजूषा है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ८२।

मूल्य दो रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोश

नाममाला सभाष्य [संस्कृत] : धनंजय, अमरकीर्ति

सं० : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

संस्कृत भाषा का एक लघु किन्तु चमत्कारी कोश ग्रन्थ जिस में एक शब्द के अनेक अर्थ और अनेक शब्दों का एक अर्थ ही नहीं दिया गया प्रत्युत उन शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी गयी है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १५६।

मूल्य तीन रुपये पचास पैसे

विविध

कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ-सूची : सं० : पं० के० भुजबली शास्त्री

जैन-मठ, जैन-सिद्धान्त भवन, सिद्धान्त वसदि मूडबिद्री, जैन-मठ कारकल, आदिनाथ ग्रन्थ-भण्डार अलियूर तथा मूडबिद्री के अन्य ग्रन्थ-भण्डारों के ३५३८ अमूल्य ताडपत्रीय ग्रन्थों का सविवरण परिचय। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ३५६।

मूल्य तेरह रुपये

जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी] : पं० आशाधर

सं० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

तीर्थंकर के लिए प्रयुक्त होने वाले एक हज़ार आठ नामों की सयुक्तिक व्युत्पत्ति और विवेचन। अपने ढंग की पहली कृति और प्रथम प्रकाशन। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या २८८।

मूल्य चार रुपये

वर्ण, जाति और धर्म [हिन्दी] : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

जैन-सिद्धान्त और शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर जैन-दृष्टि से वर्ण, जाति और धर्मविषयक मान्यता का निष्पक्ष और प्रामाणिक विवेचन। अपने ढंग की प्रथम कृति। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ४७२।

मूल्य तीन रुपये

दक्षिण भारत में जैन धर्म [हिन्दी]

लेखक—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रचार सुदूर प्राचीन काल से रहा है। इधर की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोध-खोजों के आधार पर कई विद्वानों ने अँगरेज़ी में दक्षिण भारत में जैन धर्म की जानकारी दी है। हिन्दी में अभी तक यह सामग्री उपलब्ध नहीं थी। विद्वान् लेखक ने परिश्रमपूर्वक हिन्दी पाठकों के लिए इसे तैयार किया है। डिमाई आकार के २१८ पृष्ठों में पुस्तक छप कर तैयार है तथा पाठकों के लिए उपलब्ध है।

मूल्य सात रुपये

कल्याणकल्पद्रुम [संस्कृत-हिन्दी]

मूल—वादिराज सूरि, सम्पादन-अनुवाद : श्री जुगलकिशोर मुख़्तार

एकीभाव नाम से प्रसिद्ध संस्कृत स्तोत्र को पं० युगल किशोर मुख्तार ने विस्तृत हिन्दी भाष्य सहित कल्याण कल्पद्रुम नाम से तैयार किया है। प्रस्तावना में नाम की सार्थकता आदि पर विस्तार से विचार किया गया है। पुस्तक क्राउन साइज़ के ७५ पृष्ठों में छप कर तैयार है। मुख्तार साहब ने अपनी ९१वीं जन्म जयन्ती के शुभ अवसर पर इस की एक हज़ार प्रतियाँ निःशुल्क भी वितरित की हैं।

मूल्य डेढ़ रुपये

आधुनिक जैन कवि [हिन्दी] : संक०-सं० : श्रीमती रमा जैन

बीसवीं शती के चुने हुए प्रसिद्ध जैन कवियों का परिचय और उन की सुरुचिपूर्ण कविताओं का संकलन। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ संख्या २८०।

मूल्य तीन रुपये पचहत्तर पैसे

मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी] : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

महामन्त्र णमोकार की व्याख्या और उस के माहात्म्य का सरल, संक्षिप्त और सरस विवेचन। तृतीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २५८। मूल्य तीन रुपये

योगसार प्राभृत : मूल : आचार्य अमितगति

सम्पादक : पं० जुगलकिशोर मुख़्तार

आचार्य अमितगति कृत योगसार-प्राभृत भारतीय योगशास्त्र—विशेषकर जैन योगशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के नौ अधिकारों में आचार्य अमितगति ने विस्तार के साथ इन विषयों का विवेचन किया है। जीव और अजीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने के उपरान्त योगी के भावों का किस प्रकार क्रमिक विकास होता जाता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और किस प्रकार वह एक के बाद एक श्रेणी चढ़ता हुआ मोक्ष के सर्वोच्च शिखर पर आरोहित होता है, इन स्थितियों का स्पष्ट और सांगोपांग विवेचन इस में उपलब्ध होता है। मूल्य आठ रुपये

मुक्तिदूत [हिन्दी] : वीरेन्द्रकुमार जैन

अंजना और पवनंजय की प्रेम-कथा को आधार मान कर लिखा गया एक सरस, मृदु और मोहक पौराणिक रोमांस, जिस के विषय में जैनेन्द्रकुमार ने लिखा—इतना सचित्र और मनोरम वर्णन हिन्दी में मैं ने अन्यत्र देखा है, ऐसा याद नहीं पड़ता। प्रसाद के बाद यह शोभा और श्री गद्य में मैं ने वीरेन्द्र में ही पायी। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ३३६। मूल्य पाँच रुपये

वर्द्धमान [हिन्दी] : अनूप शर्मा

यशस्वी कवि के इस महाकाव्य में जन-गण-मन अधिनायक भगवान् महावीर की ऐसी अनूठी प्रतिमा मूर्त हुई है, जिस के अभाव में माँ भारती का मन्दिर अब तक सूना-सूना लग रहा था। कृति इतनी अनुपम है कि उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुई है। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ५८५।

मूल्य छह रुपये

जैन जागरण के अग्रदूत [हिन्दी] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

बीसवीं शती के दिवंगत और वयोवृद्ध प्रमुख दिगम्बर जैन कर्मठ कार्य-कर्ताओं के संस्मरण एवं सचित्र परिचय जो कहानी से रोचक, हितोपदेश से प्रेरक और सिद्धान्त-वचनों की तरह उद्बोधक हैं। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ६१९। मूल्य पाँच रुपये

खण्डहरों का वैभव [हिन्दी] : मुनि कान्तिसागर

भारतीय पुरातत्त्व विशेषकर जैन पुरातत्त्व का स्वयं निरीक्षण-परीक्षण कर के लिखा गया विवेचन जो जितना प्रामाणिक है उतना ही सरस और रोचक भी। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ४३२। मूल्य छह रुपये

खोज की पगडण्डियाँ [हिन्दी] : मुनि कान्तिसागर

प्रस्तुत पुस्तक में ललित कला, लिपि तथा भौगोलिक यात्रा शीर्षक तीन भागों में जैनाश्रित और बौद्धधर्माश्रित चित्रकला पर जहाँ सामग्री दी गयी है वहीं नालन्दा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और विन्ध्याचल की यात्रा भी मनोरंजन के साथ-साथ खोज की पगडण्डियाँ प्रशस्त करती हैं। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २९१।

मूल्य चार रुपये

अध्यात्मपदावली [हिन्दी] : सं० डॉ० राजकुमार जैन

प्राचीन जैन कवियों के ६७ आध्यात्मिक पदों का संकलन और व्याख्या, जिन में भक्ति और ज्ञान का भव्य रूप अंकित हुआ है। पदों की भावात्मक पृष्ठभूमि, विचारों की सात्त्विकता, आत्मनिष्ठ अनुभूति की गहराई, अभिव्यक्ति की सुघराई, इन की सरलता, शालीनता और सरसगेयता सब भव्य है। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ३६८। मूल्य चार रुपये पचास पैसे

हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन [हिन्दी] : भाग १-२
डॉ० नेमिचन्द्र जैन

हिन्दी भाषा में लिखित जैन साहित्य-महाकाव्य, खण्डकाव्य, नीतिकाव्य, गद्य-काव्य का सर्वप्रथम तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक विवेचन-परिचय। भाग १, प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २५८। भाग २, प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २५९।

मूल्य पाँच रुपये

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [हिन्दी] : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

जैन ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर लिखा गया एक ऐसा ग्रन्थ जिस में भारतीय इतिहास के उन दुर्लभ सन्दर्भों का यथा-स्थान उल्लेख किया गया है जिन्हें भारतीय इतिहास-लेखकों ने अभी तक सुनियोजित ढंग से देखा तक नहीं था। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ७१५। मूल्य आठ रुपये

जैन भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि [हिन्दी] : डॉ० प्रेमसागर जैन

साहित्यिक, दार्शनिक, धार्मिक ग्रन्थ तथा पुरातत्त्व और कला की साक्षीपूर्वक जैन भक्ति-काव्य का वैदिक और बौद्ध भक्ति-काव्यों के साथ तुलनात्मक एवं समालोचनात्मक अध्ययन। अपने प्रकार की सर्वप्रथम पुस्तक। डिमाई साइज़, पृष्ठ-संख्या २३ + २२३।

मूल्य छह रुपये

हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि [हिन्दी] : डॉ० प्रेमसागर जैन

हिन्दी के उन अनेक विशिष्ट जैन कवियों के जीवन और साहित्य का परिचय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेचन, जिन का हिन्दी भक्ति-काव्य की विपुल निधि में मूल्यवान् योगदान है पर जो अभी तक प्रायः अज्ञात रहे। प्रथम संस्करण, डिमाई साइज़, पृष्ठ-संख्या २२+५०७। मूल्य बारह रुपये

अपभ्रंश भाषा और साहित्य : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

प्रस्तुत कृति अपभ्रंश भाषा, उस का युग और स्रोत, अपभ्रंश कवि और अपभ्रंश काव्यों का तो परिचय कराती ही है, अपभ्रंश काव्यों में वर्णित प्रकृति-चित्रण, समाज और संस्कृति के तात्कालिक परिवेश तथा दार्शनिक मत-मान्यता आदि की भी जानकारी देती है। सम्पूर्ण विशाल अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन कोई भले ही न कर पाये पर उस का परिचय पाना और रसास्वादन प्राप्त करना हो तो प्रस्तुत कृति पढ़ना अनिवार्य है। मूल्य दस रुपये

कविवर बनारसीदास : डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य के निर्माण में जैन साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कविवर बनारसीदास भक्तिकालीन जैन साहित्यकारों में अग्रगण्य थे। प्रस्तुत कृति उन्हीं के व्यक्तित्व और कृतित्व का शोधक और समीक्षक दृष्टि से किया गया एक ऐसा अध्ययन है जो कवि के जीवन के हर पहलू को उजागर करता है। मूल्य दस रुपये

भाव और अनुभाव [हिन्दी] : मुनि नथमल

ज्ञान, अनुभूति और तप की त्रिवेणी से उद्भूत सूक्ति रत्नाकर जो जितना सरस, सौम्य और व्यापक है उतना ही प्रेरक, उद्बोधक और सरल जीवन का समीचीन पाथेय भी। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या १२०।

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

अतीत का अनावरण : आचार्य तुलसी, मुनि नथमल

इस लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण कृति में संस्कृति के प्राग्वैदिक अस्तित्व के दर्शन हैं, उस की पहचान है। श्रमण संस्कृति आत्मविद्या के सन्धानी क्षत्रियों की उपलब्धि, आर्य-अनार्य, बुद्ध और महावीर, आगम ग्रन्थों का विचार और व्यवहार तत्त्व, वृहत्तर भारत के दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध की विभाजन रेखा जैसे विषयों पर मनीषी-द्वय की मौलिक दृष्टि प्रतिपादित है। मूल्य पाँच रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीघ्र प्रकाश्य

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

यह वास्तव में एक सुखद आश्चर्य की वात है कि जो कार्य अनेक विद्वान् कई वर्षों तक लग कर सम्पन्न कर पाते उसे एक ही साधक ने ६ वर्षों की अनवरत तन्मयता के फलस्वरूप अकेले सम्पन्न किया है। भारतीय संस्कृति और साहित्य—विशेषकर जैन सिद्धान्त, धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रत्येक अध्येता, प्रेमी एवं प्रशंसक व्यक्ति के लिए यह एक विशेष कृतज्ञता का विषय है कि श्रद्धेय क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी ने ऐसी बहुमूल्य और अद्‌भुत निधि उन्हें प्रदान की।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश शब्द-कोश तथा विश्वकोशों की परम्परा में एक अपूर्व व विशिष्ट कृति है। इस में जैन तत्त्वज्ञान, आचार-शास्त्र, कर्मसिद्धान्त, भूगोल, ऐतिहासिक तथा पौराणिक व्यक्ति, राजपुरुष तथा राजवंश, आगम शास्त्र व शास्त्रकार, धार्मिक तथा दार्शनिक सम्प्रदाय आदि से सम्बन्धित छह हजारसे अधिक शब्दों एवं बीस हजार से अधिक विषयों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इस की महत्ता और उपयोगिता इस लिए और भी बढ़ जाती है, क्योंकि यह विवेचन संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा में लिखित प्राचीन जैन साहित्य के सौ से अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थों से संकलित मूल सन्दर्भों, उद्धरणों तथा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया गया है।

शब्द संकलन तथा विषय विवेचन—प्रस्तुत कोश में शब्दों का चयन कोश ग्रन्थों की शैली पर अकारादि क्रम से किया गया है तथा मूल शब्द के अन्तर्गत उस से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का विवेचन किया गया है। ऐतिहासिक क्रम से मूल ग्रन्थों के सन्दर्भ संकेत उद्धरण तथा उन का हिन्दी अनुवाद दे कर विषय को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध उस विषय की सम्पूर्ण सामग्री एक साथ उपलब्ध हो जाये, और अनुसन्धाता विद्वानों, स्वाध्याय-प्रेमी मनीषियों तथा साधारण पाठकों के लिए एक विशिष्ट सन्दर्भ-सागर ग्रन्थ का काम दे।

यह कोश अनुसन्धाता विद्वानों को दार्शनिक, सैद्धान्तिक व भौगोलिक विषयों की विस्तृत सामग्री तथा ऐतिहासिक अनुसन्धानों के लिए जैन साहित्य व साहित्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारों का, शास्त्रों व आचार्यों की परम्परा का परिचय प्रदान करता है। लेखकों व प्रवक्ताओं को विभिन्न विषयों की संपुष्टि के लिए अनेकों अकाट्य शास्त्रीय प्रमाण देता है। स्वाध्याय प्रेमियों के लिए यत्र-तत्र बिखरे हुए विशाल शास्त्रीय विषयों का एक ही स्थल पर संकलित क्रमबद्ध सार प्रस्तुत करता है। मनीषी जनों को शंका निवारणार्थ अनेकों युक्ति-युक्त समाधान देता है, और उभय नय विवेचन व उन का समन्वय एक ही स्थल पर दे कर जिज्ञासुओं को प्रकाश प्रदान करता है। विभिन्न उपदेशों को सुन कर उलझन में पड़े हुए साधकों को सरलता व समता देता है और दार्शनिक जगत् में फैले हुए विभिन्न मन्तव्यों को एक सूत्र में पिरो कर एक अखण्ड सुविशाल सुन्दर समायोजित तत्त्व का दर्शन कराता है।

सारणियाँ एवं चित्र—प्रस्तुत कोश की यह निजी विशेषता है कि विषय के भेद-प्रभेदों, करणानुयोग के विभिन्न विषयों तथा भूगोल से सम्बन्धित विषयों को रेखाचित्रों, सारणियों तथा सादे एवं रंगीन चित्रों-द्वारा सरलतम रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि विशालकाय ग्रन्थों की बहुमूल्य सामग्री सीमित स्थान में चित्रांकित की तरह एक ही दृष्टि में सामने आ जाती है। मार्गणास्थान, गुणस्थान, जीवसमास, कर्मप्रकृतियाँ, ओघ और आदेश प्ररूपणाएँ, जीवों की अवगाहना, आयु आदि का विवरण, त्रेसठ शलाका पुरुषों की जीवनियों का ब्यौरेवार विवरण, उत्कर्षण, अपकर्षण, अधःकरण, अपूर्वकरण आदि का सूक्ष्म एवं गूढ़ विवेचन, जैन मान्यतानुसार तीन लोकों का आकार, स्वर्ग और नरक के पटल, मध्यलोक के द्वीप, समुद्र, पर्वत, नदियाँ आदि को लगभग तीन सौ सारणियों एवं मनोहारी चित्रों द्वारा अत्यन्त सरल एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ : असंदिग्ध प्रामाणिकता—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस में जैन साहित्य के लगभग सौ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थों से उद्धरणों को इस प्रकार संकलित किया गया है कि इन ग्रन्थों का विषय-सार यथा-स्थान प्राप्त हो जाता है। यह इस की एक अपनी विशेषता है कि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद भी उन-उन ग्रन्थों के विद्वान् सम्पादकों का ही उद्धृत किया गया है। जिन ग्रन्थों का उपयोग किया हैं वे ये हैं—अमितगति श्रावकाचार, अनगार धर्मामृत, आत्मानुशासन, आलाप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्धति, आप्त परीक्षा, आप्त मीमांसा, इष्टोपदेश, कषायपाहुड, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, कुरलकाव्य, क्रियाकलाप, क्रियाकोश, क्षपणसार, गुणभद्र श्रावकाचार, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, ज्ञानार्णव, ज्ञानसार, चारित्त पाहुड, चारित्रसार, जम्बूदीप पण्णत्ति संगहो, तत्त्वानुशासन, तत्त्वार्थवृत्ति, तत्त्वार्थसार, तत्त्वार्थ सूत्र, तिलोय पण्णत्ति, त्रिलोकसार, दर्शनपाहुड, दर्शनसार, द्रव्यसंग्रह, धर्मपरीक्षा, धवला पुस्तक, बृहद् नय चक्र, नय चक्र, नियमसार, नियमसार-तात्पर्य वृत्ति, न्यायदीपिका, न्यायविन्दु, न्यायविनिश्चय, न्यायदर्शन सूत्र, पंचास्तिकाय, पंचाध्यायी-पूर्वार्ध, पंचाध्यायी उत्तरार्ध, पद्मनन्दि पंचविंशतिका, पंचसंग्रह-प्राकृत, पंचसंग्रह संस्कृत, पद्मपुराण, परीक्षामुख, परमात्म-प्रकाश, पाण्डवपुराण, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, प्रवचनसार, प्रतिष्ठासारोद्धार, वारस अणुवेक्खा, वोधपाहुड, भगवती आराधना, भावपाहुड, महापुराण, महावन्ध, मूलाचार, मोक्षपंचाशिका, मोक्षपाहुड, मोक्ष मार्ग प्रकाशक, युक्त्यनुशासन, योगसार अमितगति, योगसार योगेन्दुदेव, रत्नकरण्डश्रावकाचार, रयणसार, राजवार्तिक, लब्धिसार, लाटी संहिता, लिंग पाहुड, वसुनन्दि श्रावकाचार, वैशेषिक दर्शन, शीलपाहुड, श्लोकवार्तिक, षट्खण्डागम, सप्तभंगी तरंगिणी, स्याद्वादमंजरी, समाधि शतक, समयसार, सर्वार्थसिद्धि, स्वयम्भू स्तोत्र, सागारधर्मामृत, सामायिक पाठ अमितगति, सिद्धान्त सार संग्रह, सिद्धिविनिश्चय, सुभाषितरत्न सन्दोह, सूत्र पाहुड, हरिवंशपुराण।

मुद्रण-प्रस्तुति—इस महत्त्वपूर्ण एवं बहुमूल्य कृति का वैशिष्ट्य इस लिए और भी बढ़ जाता है कि इस की मुद्रण प्रस्तुति अब तक प्रकाशित कोशों या विश्वकोशों से सर्वथा विशिष्ट है। ग्रन्थ में सब छह प्रकार के टाइपों का उपयोग इस तरह किया गया है कि मूल शब्द, विषय शीर्षक, उपशीर्षक, अन्तर शीर्षक, अन्तरान्तर शीर्षक तथा सन्दर्भ संकेत, उद्धरण और हिन्दी अर्थ एक ही दृष्टि में स्वतन्त्र रूप से स्पष्ट ज्ञात हो जाते हैं। सामग्री का समायोजन भी वर्गीकृत रूप में इस प्रकार प्रस्तुत है कि टाइपों का इतना वैभिन्न्य होते हुए भी मुद्रण का सौन्दर्य निखरा है। सारणियों और रेखाचित्रों की प्रस्तुति तो और भी अद्भुत है कि बहुत ही कम स्थान में अधिकतम सामग्री समाहित कर दी गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ का परिमाण और अनुमानित प्रकाशन व्यय आदि—यह विशालकाय ग्रन्थ सुपर रायल साइज़ के लगभग तीन हज़ार पृष्ठों में मुद्रित होगा और एक-एक हज़ार पृष्ठ की तीन-जिल्दों में पाठकों के लिए उपलब्ध होगा। पहले भाग का मुद्रण प्रारम्भ हो चुका है और आशा है कि शीघ्र तैयार होगा। पूरे ग्रन्थ के मुद्रण प्रकाशन पर भारतीय ज्ञानपीठ की एक बड़ी राशि व्यय होगी फिर भी बहुमूल्य कृति अधिक से अधिक पाठकों को उपलब्ध हो सके इस उद्देश्य से पूरे सेट का मूल्य एक सौ पचास रुपया मात्र रखा गया है।

शाकटायन व्याकरण [संस्कृत]

मूल : आचार्य शाकटायन : सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

व्याकरण साहित्य का यह एक विशिष्ट ग्रन्थ है। अमोघवृत्ति सहित इस का सर्व-प्रथम प्रकाशन हो रहा है। लगभग सात वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ मुद्रण के लिए प्रेस में दिया गया था, किन्तु विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों के कारण मुद्रण में इतना समय लग गया। पूरा ग्रन्थ सुपर रायल साइज़ के ४७२ पृष्ठों में छप चुका है। इस की प्रस्तावना जर्मनी में भारतीय व्याकरण शास्त्र के विशिष्ट विद्वान् डॉ० विर्वे ने लिखी है। प्रस्तावना तैयार होते ही ग्रन्थ पाठकों को सुलभ हो सकेगा।

द्विसन्धान महाकाव्य [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : धनंजय कवि : सम्पादन-अनुवाद : प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला

रामायण और महाभारत की कथा को एक साथ कहने वाला एक अद्भुत महाकाव्य है। केवल मूल मात्र बहुत पहले निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। प्राचीन संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद के साथ पहली बार प्रकाशित हो रहा है। लगभग पूरा ग्रन्थ ३२० पृष्ठ सुपर रायल साइज़ में छप चुका है, अनुक्रमणिका तथा प्रस्तावना शेष है। तैयार होते ही पाठकों को सुलभ हो सकेगा।

षड्दर्शनसमुच्चय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : हरिभद्र सूरि : सम्पादन-अनुवाद : स्व० डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

स्व० डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ने हरिभद्र सूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय का सम्पादन कर के हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण तैयार किया था। गुणरत्नसूरि कृत तर्करहस्यदीपिका, मणिभद्र सूरि कृत लघुवृत्ति तथा अवचूर्णि के साथ इस का प्रकाशन हो रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शृंगारार्णवचन्द्रिका [संस्कृत]

मूल : विजय वर्णी : सम्पादन : डॉ० वी० एम० कुलकर्णी

यह अलंकार शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। डॉ० कुलकर्णी ने पहली वार इस का सम्पादन किया है। माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला के पचासवें पुष्प में इस का प्रकाशन हो रहा है।

पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]

मूल : महाकवि स्वयंभू : हिन्दी-अनुवाद : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

पउमचरिउ के तीन भाग पहले ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हो चुके थे, उसी का शेषांश लगभग दो और होगा। जिस का एक भाग तैयार हो चुका है।

सुदर्शनचरित [संस्कृत]

मूल—विद्यानन्दि : सम्पादक : डॉ० हीरालाल जैन

सरल संस्कृत पद्यों में निवद्ध इस लघुकाय ग्रन्थ में सुदर्शन का जीवन चरित्र काव्य शैली में प्रतिपादित किया गया है। माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला में प्रकाश्य।

भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा काव्य [हिन्दी]

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

धनपाल कृत भविसयत्तकहा के विशेष अध्ययन के साथ इस शोध प्रबन्ध में अपभ्रंश के कतिपय अप्रकाशित एवं दुर्लभ ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

one can today call Murtidevi Jain Granthamala one of the best text series, which have been published in India. This is due to the effort, which is always apparent in all the publications, to present the pertiuent material as completly as possible, the conscientious reference to the avilable manuscripts, the careful presentation of the diffent version, the voluminous indices and the introductions, which, in spite of being rich in contents' do not go beyond the scope of the published tex. One may be permitted to give the credit of this to both the general Fditors, Dr. Hiralal Jain and Dr. A.N. Upadhye.

—*prof. Dr. E.Franwallner, Austria*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला

पुराण

महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग ३
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — ६.००

महापुराण [अपभ्रंश] उत्तरपुराण : भाग २
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

महापुराण [अपभ्रंश] आदिपुराण : भाग १
मूल : महाकवि पुष्पदन्त; सम्पादन : परशुराम शर्मा वैद्य — १०.००

हरिवंश पुराण [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

हरिवंश पुराण [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री जिनसेन सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग २
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — २.००

पद्मचरितम् [संस्कृत] भाग १
मूल : आचार्य रविषेण; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

शिलालेख

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १
सम्पादन : पं० श्री हीरालाल जैन — २.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — ८.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
संग्रहकर्त्ता : पं० श्री विजयमूर्ति — १०.००

जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग ४
सम्पादन : डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर — ७.००

◻ चरित, काव्य और नाटक

अंजनापवनंजय [नाटक]
मूल : श्री हस्तिमल्ल, सम्पादन : वासुदेव पटवर्धन — ३.००

वरांगचरित [संस्कृत]
मूल : श्री जटासिंहनन्दि; सम्पादन : डॉ० आ० ने० उपाध्ये — ३.००

जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]
मूल : पं० राजमल्ल; सम्पादन : श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री — १.५०

पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]
मूल : श्रीमदर्हद्दास; सम्पादन : श्री जिनदास शास्त्री — ०.७५

प्रद्युम्नचरित [संस्कृत]
मूल : श्री महासेन; सम्पादन : पं० मनोहरलाल, रामप्रसाद शास्त्री — ०.५०

रामायण [अपभ्रंश] (अलग से)
मूल : महाकवि पुष्पदन्त — २.५०

◻ जैन न्याय

प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]
मूल : श्री नरेन्द्रसेन; सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया — १.५०

न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग १
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.००

न्यायकुमुदचन्द्रोदय [संस्कृत] भाग २
मूल : श्री प्रभाचन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य — ८.५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

■ सिद्धान्त, आचार और नीतिशास्त्र

स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत, हिन्दी-सारांश]
मूल : श्री वादीभसिंहसूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — १.५०

त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत, मराठी अनुवाद]
मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : मोतीलाल — ०.५०

नीतिवाक्यामृत (शेषांश) [संस्कृत टीका]
मूल : सोमदेवसूरि; टीका अज्ञात — ०.२५

लाटी संहिता [संस्कृत]
मूल : श्री राजमल्ल; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — ०.५०

पञ्चसंग्रह [संस्कृत]
मूल : श्री अमितगति सूरि; सम्पादन : पं० दरबारीलाल — ०.८१

रत्नकरण्डश्रावकाचार [मूल, संस्कृत टीका]
मूल : श्री स्वामी समन्तभद्र; टीका : श्री प्रभाचन्द्राचार्य — २.००

सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]
मूल : श्री जिनेन्द्राचार्य; सम्पादन : पं० पन्नालाल सोनी — १.५०

हरिवंशपुराण सम्पादन : डॉ० पी० एल० वैद्य — २.५०

आराधनासमुच्चयो योगसारसंग्रहश्च
मूल : मुनि रविचन्द्र; श्रीगुरुदास
सम्पादन : डॉ० आ० ने० उपाध्ये — १.००

■ काव्य शास्त्र

शृंगारार्णवचन्द्रिका [संस्कृत]
मूल : विजयवर्णी
सम्पादन : डॉ० वी० एम० कुलकर्णी — ३.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कन्नड़ ग्रन्थमाला

सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रकाशन के क्षेत्र में भारतीय ज्ञानपीठ का योगदान, और उस की उपलब्धियाँ सर्वविदित हैं। अपने उद्देश्यों को दृष्टि में रखते इधर उस ने एक नयी योजना को रूप दिया है। इस के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण कन्नड़ शास्त्रीय ग्रन्थों के टीकासहित संस्करण प्रकाशित किये जायेंगे जिन में मूलपाठ के साथ प्रचलित कन्नड़ में शब्दशः पर प्रवाहमय अनुवाद भी दिया होगा। योजना यहाँ तक है कि यथासमय इन ग्रन्थों को हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी प्रस्तुत किया जाये।

इस समय निम्नलिखित बारह ग्रन्थों को सम्पादन-प्रकाशन के लिए चुना गया है—

(१) पम्पकृत 'भारत अथवा विक्रमार्जुन-विजय'
(२) पोन्नकृत 'शान्तिनाथपुराण'
(३) रन्नकृत 'गदायुद्ध'
(४) रन्नकृत 'अजितनाथ पुराण'
(५) नयसेनकृत 'धर्मामृत'
(६) नागचन्द्रकृत 'मल्लिनाथपुराण'
(७) जन्नकृत 'अनन्तनाथपुराण'
(८) जन्नकृत 'यशोधराचरित'
(९) आण्णाय्यकृत 'कब्बिगर काव'
(१०) नागराजकृत 'पुण्यास्रव'
(११) नागचन्द्रकृत 'रामचरित'
(१२) पम्पकृत 'आदिपुराण'।

इन संस्करणों की रूपरेखा आदि निर्धारित करने में ग्रन्थमाला सम्पादकों डॉ॰ हीरालाल जैन और डॉ॰ ए॰ एन्॰ उपाध्ये ने प्रायः सभी प्रमुख कन्नड़ विद्वानों से परामर्श किया है। इन में उल्लेखनीय नाम हैं: प्रो॰ एम॰ एम॰ भट, मद्रास; श्री एच॰ देवीरप्पा, मैसूर; प्रो॰ के॰ एस् धरणेन्द्रय्या, बंगलोर; डॉ॰ आर॰ सी॰ हिड़ेमठ, धारवाड़; प्रो॰ के॰ जी॰ कुण्डंगर बेलगाँव; श्री अण्णाराव मीरंजी, शेदबल; डॉ॰ आर॰ एस्॰ मुगली, सांगली; प्रो॰ डी॰ एल्॰ नरसिंहाचार, मैसूर; श्री डी॰ पुट्टस्वामी, मंगलोर; पं॰ के॰ बी॰ शास्त्री, मूडबिद्री; प्रो॰ टी॰ एन्॰ श्रीकान्तय्या, मैसूर। इन सब विद्वानों ने परामर्श समिति में भी रहना स्वीकार किया है।

योजना की विस्तृत रूपरेखा भारतीय ज्ञानपीठ के प्रधान कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ
महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध

प्रत्येक पुस्तकालय और
साहित्य-अध्येता के लिए अनिवार्य

हिन्दी पत्रकारिता •
डॉ० कृष्णविहारी मिश्र : २५.००

कुतब शतक और उसकी हिन्दुई •
डॉ० माताप्रसाद गुप्त : ७.००

अपभ्रंश भाषा और साहित्य •
डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन : १२.००

हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि •
डॉ० प्रेमसागर जैन : १२.००

कविवर बनारसीदास •
डॉ० रवीन्द्र कुमार जैन : १०.००

तुलसी : आधुनिक वातायन से •
डॉ० रमेश कुन्तल मेघ : १२.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता • वाराणसी
विक्रय कार्यालय :
३६२०।२१, नेता जी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ नवम्बर १९६९ से भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशनों की संशोधित मूल्य-सूची

लोकोदय ग्रन्थमाला

राष्ट्रभारती

ग्रन्थांक	पुस्तक	लेखक	मूल्य
२८४	रणांगण [उपन्यास : मराठी]	विश्राम वेडेकर	३.५०
२७९	रंगीन रुबाइयाँ : सिन्धी	डॉ० सदारंगानी	३.००
२७३	निशीथ [कविता, पुरस्कृत]	उमाशंकर जोशी	१०.००
२७४	प्राचीना [काव्य-रूपक]	उमाशंकर जोशी	६.००
२७१	श्री और सौरभ : [निबन्ध]	उमाशंकर जोशी	८.००
२७५	श्री रामायण दर्शनम् [कविता, पुरस्कृत]	कु० वें० पुट्टप्प	३.००
२७८	दो पुरुष [नाटक]	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	३.००
२७२	हँसली बाँक की उपकथा [उपन्यास]	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	१०.००
२५८	गणदेवता [उपन्यास, पुरस्कृत, द्वि० सं०]	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	१८.००
२७६	रंगपांचालिक और दो नाटक	पु० शि० रेगे	३.००
२६२	तीन सहेलियाँ [कहानी]	पु० शि० रेगे	४.००
२४१	एक और नचिकेता [कविता]	जी. शंकर कुरुप	४.००
२३५	ओटक्कुषल [कविता, पुरस्कृत]	जी. शंकर कुरुप	१०.००
१७१	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी एक [द्वि० सं०]	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	६.००
२०४	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	६.००
२२४	प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी [पुरस्कृत]	सं० : दिनकर सोनवलकर	६.००
१९०	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी एक	कर्तारसिंह दुग्गल	६.००
२०७	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	५.००
१९१	प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी [द्वि० सं०]	सं० : अनिलकुमार	७.००
१७०	प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला [द्वि० सं०]	'परशुराम'	५.००
१६८	प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	५.००

उपन्यास

२८०	कृष्णकली	शिवानी	७.००
२१३	अस्तंगता	'भिक्खु'	७.००
१६९	महाश्रमण सुनें ! [द्वि० सं०]	'भिक्खु'	४.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२५	अठारह सूरज के पौधे	रमेश बक्षी	४.५०
२१५	जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	५.००
१९९	जो [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	४.००
७९	गुनाहों का देवता [दसवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	८.००
१६४	सूरज का सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.५०
१५४	पीले गुलाब की आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	६.००
१४३	अपने-अपने अजनबी [द्वि० सं०]	अज्ञेय	४.००
१३७	पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	५.००
१२६	ग्यारह सपनों का देश [द्वि० सं०]	सं० : लक्ष्मीचन्द्र जैन	७.००
११३	राजसी	देवेशदास आइ० सी० एस्०	५.००
५५	रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ० सी० एस्०	५.००
८०	शतरंज के मोहरे [पुरस्कृत, तृ० सं०]	अमृतलाल नागर	८.००
६२	संस्कारों की राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्णप्रसाद	४.००
५१	तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	४.५०
१	मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	८.००

■ कहानी

२६७	बादलों के बीच धूप	कमल जोशी	४.००
२५२	एक समर्पित महिला	नरेश मेहता	४.००
२५१	प्रतिनिधि संकलन : सिंहल कहानियाँ	सं० : भदन्त आनन्द कौसल्यायन	६.००
२३८	काठ का सपना	ग० मा० मुक्तिबोध	५.००
२३१	राजा निरबंसिया [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	६.००
१७३	खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	४.५०
२२९	सवेरा संघर्ष गर्जन	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	८.००
२२७	मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	५.००
८५	कर्मनाशा की हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	५.००
१९५	झाड़ी [द्वि० सं०]	श्रीकान्त वर्मा	४.५०
१६६	मेज़ पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	५.००
१५९	बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	५.००
११५	ऑस्कर वाइल्ड की कहानियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	४.५०
१५१	प्यार के बन्धन [द्वि० सं०]	रावी	५.००
६५	मेरे कथागुरु का कहना है : १	रावी	५.००
१४४	मेरे कथागुरु का कहना है : २ [द्वि० सं०]	रावी	५.००
३५	पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	५.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४२	ज़िन्दगी और गुलाब के फूल [द्वि० सं०]	उषा प्रियंवदा	४.५०
१३१	सूने आँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	५.००
९४	एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	५.००
८९	अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	४.५०
८२	मोतियों वाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	५.००
६९	हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	४.००
६३	जय-दोल [च० सं०]	अज्ञेय	५.००
६०	काल के पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	५.५०
३७	अतीत के कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	६.००
५८	नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	५.००
१३९	लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
५४	कुछ मोती कुछ सीप [पुरस्कृत, तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
४३	जिन खोजा तिन पाइयाँ [च० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१२	गहरे पानी पैठ [च० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
३०	खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	४.५०
२४	संघर्ष के बाद [पुरस्कृत, तृ० सं०]	विष्णु प्रभाकर	५.००
२०	आकाश के तारे : धरती के फूल [च० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.५०
२	दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	४.५०

■ कविता

२८२	क्योंकि मैं उसे जानता हूँ	अज्ञेय	४.५०
२८९	पक गयी है धूप	डॉ० रामदरश मिश्र	५.००
२८८	पाँच जोड़ बाँसुरी	सं० चन्द्रदेव सिंह	१०.००
२४५	कितनी नावों में कितनी बार	अज्ञेय	४.००
१४६	आँगन के पार द्वार [पुरस्कृत, तृ० सं०]	अज्ञेय	४.००
९०	अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	५.००
२२६	तार सप्तक [द्वि० परिवर्द्धित संस्करण]	सं० : अज्ञेय	१०.००
१२२	रूपाम्बरा	सं० : अज्ञेय	१५.००
८१	तीसरा सप्तक [तृ० सं०]	सं० : अज्ञेय	८.००
२६९	अँधेरी कविताएँ	भवानीप्रसाद मिश्र	५.००
२६६	अतुकान्त	लक्ष्मीकान्त वर्मा	५.००
२६०	अभी और कुछ	शकुन्त माथुर	४.००
२५९	जो बँध नहीं सका	गिरिजाकुमार माथुर	४.००
३९	धूप के धान [पुरस्कृत, तृ० सं०]	गिरिजाकुमार माथुर	५.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४४	मेपल	डॉ० प्रभाकर माचवे	४.००
८८	अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	४.५०
२४२	माया दर्पण	श्रीकान्त वर्मा	४.५०
२३३	अग्निबीज	डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय	४.५०
२२८	शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	४.००
२२०	इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	४.५०
२१८	अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.५०
२०८	आत्मजयी	कुँवर नारायण	४.५०
२०३	चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	४.५०
२०२	संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	४.००
२०१	चाँद का मुँहटेढ़ा है [द्वि० सं०]	ग० मा० मुक्तिबोध	१०.००
१९६	हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	४.००
१९४	हम विषपायी जनम के [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	२०.००
१८६	बीजुरी काजल आँज रही [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	४.५०
११८	वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	४.५०
१८५	अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	४.००
१७८	रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	३.००
१३४	वीणापाणि के कम्पाउण्ड में	केशवचन्द्र वर्मा	४.५०
१२७	आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	४.००
१२०	देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
९१	सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	४.५०
८६	कनुप्रिया [तृ० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	४.००
६८	वाणी [द्वि० सं०, परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	५.५०
६६	सौवर्ण [द्वि० सं०, परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.५०
२५६	अविराम चल मधुवंती	वीरेन्द्र मिश्र	४.००
६४	लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	४.५०
१३	वर्द्धमान [महाकाव्य, पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	१२.००
९	पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	२.००
८	मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	३.००

■ शाइरी

२५५	हँसें तो फूल झड़ें	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
२३६	उस्तादाना कमाल	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६.००
७६	शाइरी के नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७७	शाइरी के नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१५६	शाइरी के नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१७५	शाइरी के नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१७७	शाइरी के नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
७२	शाइरी के नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
७३	शाइरी के नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१०४	शाइरी के नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
११०	शाइरी के नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१४१	शाइरी के नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१३८	नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६.००
१४	शेर-ओ-सुख़न : भाग १ [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१४.००
२६	शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	६.००
२७	शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
२८	शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
३१	शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
	शेर-ओ-सुख़न : [भाग २-३-४-५]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१६.००
५	शेर-ओ-शाइरी [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१४.००
११९	ग़ालिब	श्रीरामनाथ 'सुमन'	१२.००
९२	मीर	श्रीरामनाथ 'सुमन'	८.००
१५८	गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	५.००

■ नाटक

२६३	शुतुरमुर्ग़	ज्ञानदेव अग्निहोत्री	२.५०
२१९	प्रेत	इब्सेन, अनु० नेमिचन्द्र जैन	३.५०
२०५	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	७.००
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	७.००
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	४.००
१००	सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	३.००
१७२	आदमी का ज़हर [द्वि० सं०]	लक्ष्मीकान्त वर्मा	४.५०
१६७	घाटियाँ गूंजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	५.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	३.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भ० श० उपाध्याय	६.००
९८	जनम क़ैद [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	गिरिजाकुमार माथुर	५.००
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	५.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७५	बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	५.५०
६७	चेखॅव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	६.००
५९	तरकश के तीर	श्रीकृष्ण	५.००
५३	पचपन का फेर [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	विमला लूथरा	६.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	४.५०
१७	रजत रश्मि [पुरस्कृत, तृ० सं०]	डॉ० रामकुमार वर्मा	४.२५

■ विधा-विविधा

२५४	अपनी शताब्दी के नाम	दूधनाथ सिंह	५.००
१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	६.००
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	६.००
१२५	पत्थर का लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	५.००
१०२	सीढ़ियों पर धूप में	रघुवीर सहाय	६.००
८७	काठ की घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	१०.००

■ रुचिर-कलात्मक

१९२	शैशवांकन		१२.००
१६१	परिणय गीतिका [द्वि० सं० प्रकाश्य]	सं० : रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

■ ललित-निबन्धादि

२६१	प्रिया नीलकण्ठी	कुबेरनाथ राय	५.००
२४६	अवधी व्रत कथाएँ	डॉ० इन्दुप्रकाश पाण्डेय	७.००
२४०	पुरातत्त्व का रोमांस	डॉ० भ० श० उपाध्याय	६.००
१११	सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भ० श० उपाध्याय	५.००
१०३	ठूँठा आम	डॉ० भ० श० उपाध्याय	४.००
२३७	परिवेश	मोहन राकेश	६.००
२३९	वाग्धारा	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	५.००
२१६	कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	४.००
२११	चिन्तक की लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	६.००
११७	अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७	एक साहित्यिक की डायरी [तृ० सं०]	ग० मा० मुक्तिबोध	३.२५
१८१	हम सब और वह [द्वि० सं०]	दयानन्द वर्मा	३.००
१८०	बातें, जिन में सुगन्ध फूलों की	अहमद सलीम	४.५०
१८३	क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	५.५०
१६५	महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	६.००
५७	बाजे पायलिया के घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	५.५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६	माटी हो गयी सोना [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
२५	ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	६.००
१६३	शिखरों का सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	५.००
१४८	फिर बैतलवा डाल पर	विवेकी राय	५.००
१४७	आँगन का पंछी और बनजारा मन	विद्यानिवास मिश्र	४.५०
१२८	नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
१२३	काग़ज़ की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	५.००
९६	वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	४.५०
७१	बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	४.५०
७०	ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	२.००
४६	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	४.५०
२९	हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान [तृ० सं०]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	२.००

■ यात्रा-विवरण

२६५	आख़िरी चट्टान तक	मोहन राकेश	४.००
१८७	चीड़ों पर चाँदनी	निर्मल वर्मा	५.००
१३६	हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	७.००
१३०	एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	८.००
९९	सागर की लहरों पर	डॉ० भ० श० उपाध्याय	६.००
८४	पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	५.००

■ संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

२६८	युगद्रष्टा भगत सिंह	वीरेन्द्र सिन्धु	१५.००
२५०	शान्तिनिकेतन से शिवालिक	सं० : शिवप्रसाद सिंह	२०.००
२३२	वह नन्हा-सा आदमी	सुमंगल प्रकाश	६.००
१६२	समय के पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	४.५०
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	७.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'वरुआ'	१०.००
१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	७.००
७४	दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	६.००
३४	द्विवेदी पत्रावली [अप्राप्य]	बैजनाथ सिंह 'विनोद'	५.००
२१	रेखाचित्र [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	बनारसीदास चतुर्वेदी	८.००
१९	संस्मरण [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	बनारसीदास चतुर्वेदी	६.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	६.००
१५	जैन-जागरण के अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१०.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

■ अध्ययन, आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

२८३	नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ	डॉ० जगदीश गुप्त	१०.००
२७०	हिन्दी पत्रकारिता	डॉ० कृष्णविहारी मिश्र	२५.००
२४९	तुलसी : आधुनिक वातायन से	डॉ० रमेश कुन्तल मेघ	१२.००
२४३	कुतबशतक और उस की हिन्दुई	डॉ० माताप्रसाद गुप्त	७.००
२३४	हिन्दी शब्द-रचना	माईदयाल जैन	८.००
२३०	कविवर बनारसीदास	डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२१	विवेक के रंग	सं० : डॉ० देवीशंकर अवस्थी	९.००
२१४	नये प्रतिमान : पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
२१०	हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ	कृष्णाचार्य	१०.००
२५७	अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	५.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	३.५०
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	६.००
४२	शरत् के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	७.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि [पुरस्कृत]	डॉ० प्रेमसागर जैन	१६.००
१५७	जैन भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	८.००
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	डॉ० कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य [द्वि० सं०]	डॉ० रघुवंश	७.००
१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१२.००
१३५	रेडियो वार्त्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	४.००
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	४.५०
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
८३	प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	५.००
४५	संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	५.००
४४	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	५.००
४९	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	५.००
४८	संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन [तृ० सं०]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	८.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	७.००
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	१२.००

■ इतिहास-राजनीति

१९८	भारतीय संस्कृति का विकास : वैदिक धारा [द्वि० सं०]	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	१२.००
१४५	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१५.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२१	समाजवाद [छठा सं०]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	७.००
५२	एशिया की राजनीति	परदेशी	६.००
१०७	इतिहास साक्षी है	डॉ० भ० श० उपाध्याय	५.००
३६	कालिदास का भारत : भाग १ [तृ० सं०]	डॉ० भ० श० उपाध्याय	७.००
४०	कालिदास का भारत : भाग २ [तृ० सं०]	डॉ० भ० श० उपाध्याय	६.००
३२	चौलुक्य कुमारपाल [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	लक्ष्मीशंकर व्यास	७.००
२३	खोज की पगडण्डियाँ [पुरस्कृत, द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	७.००
२२	खण्डहरों का वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	९.००

■ दार्शनिक-आध्यात्मिक

२८७	अतीत का अनावरण	आचार्य तुलसी, मुनि नथमल	५.००
२१७	तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो [तृ० सं०]	मुनि नथमल	२.५०
२१२	क्या धर्म बुद्धिगम्य है ? [द्वि० सं०]	आचार्य तुलसी	२.५०
२७७	वेदार्थ प्रवेशिका	डॉ० सम्पूर्णानन्द	२.५०
२०६	दर्शन अनुचिन्तन	म०म० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी	४.५०
२००	तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	२.५०
३३	अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	७.००
१०	भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	४.००
७	वैदिक साहित्य [द्वि० सं०]	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	१०.००

■ सूक्तियाँ

१८२	भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	३.५०
१४०	सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	४.५०
११	ज्ञानगंगा : भाग १ [तृ० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	१०.००
११६	ज्ञानगंगा : भाग २ [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	१०.००
९३	कालिदास के सुभाषित	डॉ० भ० श० उपाध्याय	७.००
६१	शरत् की सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	४.००

■ हास्य-व्यंग्य

२६४	कुछ उथले : कुछ गहरे	डॉ० इन्द्रनाथ मदान	४.००
२४८	सदाचार का तावीज़	हरिशंकर परसाई	४.००
१७६	जैसे उन के दिन फिरे [तृ० सं०]	हरिशंकर परसाई	३.५०
२४७	कुत्ते की दुम	डॉ० र० श० केलकर	४.५०
२२२	बक रहा हूँ जुनून में	प्रकाश पण्डित	४.५०
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	३.००
१८४	काग़ज़ के फूल	भारतभूषण अग्रवाल	३.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	३.५०
१६०	तेल की पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१५३	हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	८.००
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० : केशवचन्द्र वर्मा	५.५०
१०५	मुर्गा-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	४.००
९७	अंगद का पाँव	श्रीलाल शुक्ल	५.००

■ चिकित्सा

२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	४.००

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तक का पूरा नाम आदि न दे कर केवल ग्रन्थमाला के नाम का प्रथमाक्षर और साथ में दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'निशीथ' के लिए 'लो—२७३' मात्र।

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

■ तत्त्वज्ञान और सिद्धान्तशास्त्र

क्रमांक	ग्रन्थांक		
१	१०	तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग १	१२.००
२	२०	तत्त्वार्थराजवार्तिक [संस्कृत] भाग २ मूल : भट्ट अकलंक; सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य	१२.००
१/क	३३	योगसारप्राभृत [संस्कृत-हिन्दी] मूल : अमितगति, सं०-अनु० पं० जुगलकिशोर मुख्तार	८.००
२/क	८	जैन धर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी] संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री	५.००
३/क	१३	सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी] मूल : आचार्य पूज्यपाद; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री	१८.००
१/ख	१०	पंचसंग्रह [प्राकृत-हिन्दी] संकलन, सम्पादन और अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री	२१.००
१/ग	१	समयसार [प्राकृत-अँगरेज़ी] [द्वि० सं० मुद्रणमें] मूल : आचार्य कुन्दकुन्द; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० ए० चक्रवर्ती	१२.००
१/घ	४	कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न [हिन्दी] [द्वि० सं०] अनुवाद : पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल	२.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

■ जैन न्याय और कर्मग्रन्थ

१	१	महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग १ [द्वि० सं०] मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं० सु० च० दिवाकर	१५.००
२	४	महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग २ मूल : भगवन्त भूतबलि; सं०-अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री	१५.००
३	५	महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ३ ,, ,,	१५.००
४	६	महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ४ ,, ,,	१५.००
५	७	महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ५ ,, ,,	१५.००
६	८	महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ६ ,, ,,	१५.००
७	९	महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग ७ ,, ,,	१५.००
८	११	कर्मप्रकृति [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी] मूल : आचार्य नेमिचन्द्र; सम्पादन : पं० हीरालाल शास्त्री	८.००
९	३४	कर्मप्रकृति [संस्कृत-हिन्दी] मूल : अभयचन्द्र, सं०-अनु० डॉ० गोकुलचन्द्र जैन	२.००
१/क	३	न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १	१८.००
२/क	१२	न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग २ मूल : भट्ट अकलंक और वादिराज सूरि; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार	१८.००
३/क	२२	सिद्धिविनिश्चय टीका [संस्कृत] भाग १	२०.००
४/क	२३	सिद्धिविनिश्चय टीका [संस्कृत] भाग २ मूल : भट्ट अकलंक और अनन्तवीर्य; सं० : डॉ० महेन्द्रकुमार	१६.००
५/क	३०	सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत] मूल : आचार्य विद्यानन्द; सम्पादन : डॉ० गोकुलचन्द्र जैन	५.००
१/ख	१०	जैन न्याय [हिन्दी] कैलाशचन्द्र शास्त्री	११.००

■ आचारशास्त्र, पूजा और व्रत-विधान

१	३	वसुनन्दि श्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी] मूल : आचार्य वसुनन्दि; सं०-अनु० : पं० हीरालाल शास्त्री	६.००
१/क	२८	उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी] मूल : सोमदेव सूरि; सं०-अनु० : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री	१६.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२/क १९ व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : अज्ञात : सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ५.००

१/ख ११ सोलह कारण भावना [हिन्दी] : महात्मा भगवानदीन ३.००

२/ख ७ ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि [हिन्दी] [द्वि० सं०]
संकलन-सम्पादन : डॉ० आ० ने० उपाध्ये व फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ६.००

३/ख ६ मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी] [तृ० सं०]
डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ४.००

■ व्याकरण, छन्दशास्त्र और कोश

१ १७ जैनेन्द्र महावृत्ति [संस्कृत]
मूल : आचार्य अभयनन्दि; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी १८.००

२ ६ नाममाला सभाष्य [संस्कृत]
मूल : कवि धनंजय—अमरकीर्ति; सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी ४.५०

३ ५ सभाष्य रत्नमञ्जूषा [संस्कृत]
मूल : अज्ञात : सम्पादन : श्री हरि दामोदर वेलणकर ३.००

■ पुराण-साहित्य

१ २७ हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : आचार्य जिनसेन; सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २५.००

२ २१ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १ १६.००

३ २४ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २ १६.००

४ २६ पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग ३
मूल : आचार्य रविषेण; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य १३.००

५ ८ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १, [द्वि० सं०] २०.००

६ ९ आदिपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग २ [द्वि० सं०]
मूल : आचार्य जिनसेन; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००

७ १४ उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी] [द्वि० सं०]
मूल : आचार्य गुणभद्र; सं०-अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य २०.००

८ १५ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १ ५.००

९ १६ पुराणसार-संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग २
मूल : आचार्य दामनन्दि; सं०-अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ५.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित व काव्य-ग्रन्थ

१/क	२९	भोजचरित्र [संस्कृत] मूल : राजवल्लभ; सं० : डॉ० बी. सी-एच्.छाबड़ा, एस्. शंकरनारायणन्	८.००
१/ख	७	जंबूसामिचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] मूल : कवि वीर; सं०-अनु० डॉ० विमलप्रकाश जैन	१५.००
२/ख	६	सुगन्धदशमी कथा [पाँच भाषाओंमें] सं० : डॉ० हीरालाल जैन	११.००
३/ख	५	मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] मूल : कवि हरिदेव; सम्पादन-अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन	८.००
४/ख	४	करकण्डचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] द्वि० सं० मूल : कनकामर; सं०-अनु० : डॉ० हीरालाल जैन	१५.००
५/ख	१	पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग १ मूल : कवि स्वयम्भू; सं०-अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	५.००
६/ख	२	पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग २	५.००
७/ख	३	पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] भाग ३	५.००
१/ग	३१	गद्यचिन्तामणि [संस्कृत-हिन्दी] मूल : वादीभसिंह, सं०-अनु०; पं० पन्नालाल साहित्याचार्य	१२.००
२/ग	१८	जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी] मूल : कवि हरिचन्द्र; सं०-अनु०-टीका : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य	१५.००
२/ग	१	मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी] द्वि० सं० मूल : नागदेव; सं०-अनु० : डॉ० राजकुमार जैन साहित्याचार्य	८.००
१/घ	१	जातकट्ठकथा [पाली] सम्पादन : भिक्षु धर्मरक्षित	मूल्य : साधारण ८.००, विशेष ९.००
१/ङ	५	धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी] अनुवादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य	५.००

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

१	२५	भद्रबाहु संहिता [संस्कृत-हिन्दी] मूल : आचार्य भद्रबाहु; सं०-अनु० : पं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य	१४.००
२	७	केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि [संस्कृत-हिन्दी] [द्वि० सं०] मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : डॉ० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य	५.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३	२	करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी] तृ० सं० मूल : अज्ञात; सम्पादन-अनुवाद : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	१.५०
		■ विविध	
१	११	जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी] मूल : पं० आशाधर; सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री	६.००
२	३२	कल्याण कल्पद्रुम [संस्कृत-हिन्दी] पं० जुगलकिशोर मुख्तार	१.५०
१/क	१	थिरुकुरल [तमिल] सम्पादन : प्रो० ए० चक्रवर्ती	१२.००
१/ख	२	कन्नड-प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ-सूची संकलन-सम्पादन : पं० के० भुजबली शास्त्री	१३.००
१/ग	९	वर्ण, जाति और धर्म [हिन्दी] पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री	५.००
२/ग	१	आधुनिक जैन कवि [हिन्दी] संकलन-सम्पादन : श्रीमती रमा जैन	६.००
३/ग	१२	दक्षिण भारत में जैन धर्म [हिन्दी] पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्ताचार्य	७.००

सभी प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ के विक्रय कार्यालय से प्राप्त ।

भारतीय ज्ञानपीठ

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

फ़ोन : २७२५८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९, अव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi